# सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष : 47
अंक : 6
सितम्बर 2014

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सयाई-22002 (आगरा) उ.प्र.

एक प्रति : रु. 20

# अमृत कण

आहार निद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

(चाणक्य सूत्र 17/17)

आहार (खानपान), निद्रा, भय और मैथुन (संतानोत्पादन) – ये चारों बातें पशुओं और मनुष्यों में समान रूप से मिलती हैं, किंतु मनुष्यों में (पशुओं की अपेक्षा) केवल एक धर्म ही विशेष है, इसलिए धर्महीन मनुष्य को पशु के सदृश कहा गया है।

◆ ◆ ◆

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।

(मनुस्मृति 2/12)

वेद, स्मृति (धर्मशास्त्र) सदाचार और अपनी आत्मा की प्रसन्नता के अनुसार कार्य करना यह चार प्रकार का धर्म का साक्षात् लक्षण (धर्म का बोधक) कहा गया है।

◆ ◆ ◆

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति 6/92)

धृति, क्षमा, दम (अपने मन को वश में रखना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (बाह्य और आभ्यान्तर की पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धि), विद्या (आत्मविद्या), सत्य (वाणी और मन की यथार्थता) और अक्रोध (क्रोध न करना) ये दस धर्म के लक्षण हैं।

◆ ◆ ◆

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।।

(मनुस्मृति 8/17)

एक धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने पर भी उसके साथ जाता है और सब तो शरीर के नाश के साथ ही उसको त्याग कर अन्यत्र चले जाते हैं।

◆ ◆ ◆

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

(मनुस्मृति 8/17)

नष्ट (अरक्षित) हुआ धर्म ही मनुष्य को मार डालता है और वही रक्षित होने पर मनुष्य की रक्षा करता है। इसलिए नष्ट धर्म कहीं हमको न मार डाले एतदर्थ धर्म का नाश नहीं करना चाहिए।

◆ ◆ ◆

# सिद्धयोग


## योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र


ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :– शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।


वर्ष : 47 | सितम्बर 2014 | अंक : 6


अनेजदेकं मनसो जवीयो
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्त-
स्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।

*ईशावस्योपनिषद्-5*

वे परमेश्वर अचल एक और मनसे भी अधिक तीव्र गतियुक्त हैं: सबके आदि ज्ञानस्वरूप या सबके जानने वाले हैं: इन परमेश्वर को इन्द्रादि देवता भी नहीं पा सके या जान सके हैं: वे परब्रह्म पुरुषोत्तम दूसरे दौड़ने वालों को स्वयं स्थिर रहते हुए ही अतिक्रमण कर जाते हैं। उनके होने पर ही उन्हीं की सत्ता शक्ति से वायु आदि देवता जलवर्षा आदि क्रिया सम्पादन करने में समर्थ होते हैं।


**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

# SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

**Propagating Yoga & Spiritual values**

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन


## अनुक्रमणिका


1. विशेष लेख – *योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज* 3
2. सम्पादकीय 7
3. अवलोकन का सुख – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, लेखक– स्वामी सुबोधानन्द 11
4. डॉ. जादौन पर अलौकिक कृपा – जगदीश राए बंसल 12
5. श्री सिद्धयोग कृपा लीला – कुँवर ए.के सिंह 15
6. श्री मद्भागवत में योग परिचर्चा – डॉ. विजय सिंह 19
7. हमारे प्रभुजी सिद्धेश्वर – श्रीमती शारदा सज्जन सिंह 23
8. संसार का सत्य क्या है – प्रो. ऋषिराम शर्मा 24
9. योग–आसन – जानुशिरासन 34
10. यों काटा विलष्ट कर्म – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 35
11. विना पतवार के...... 37
12. साधना–पथ–पाथेय 38



| | |
|---|---|
| एक प्रति | : रु. 20.00 |
| वार्षिक शुल्क | : रु. 160.00 |
| द्विवार्षिक | : रु. 280.00 |
| आजीवन (10 वर्षीय केवल) | : रु. 900.00 |

विशेष लेख

# श्रध्दावान ही ज्ञान पाता है; संशयात्मा नहीं

योग-योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

अखिलात्मा श्री कृष्ण चन्द्र जी ने गीता में – श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञान प्राप्त का अधिकारी होता है– इस बात को खूब स्पष्ट रूप से बता दिया है। ' **श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्** ' अर्थात् श्रद्धावान ही तत्वज्ञान को पाया करता है। इसके विपरीत ' **अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति** ' अर्थात् जो व्यक्ति अज्ञानी है, श्रद्धारहित तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। संशय व्यक्ति को कुछ करने ही नहीं देता। इसलिए वह अन्त में ' विनश्यति ' की डिग्री को प्राप्त कर लेता है। इसलिये पहली बात यह है कि मनुष्य के मन में श्रद्धा होनी चाहिये। श्रद्धा सतोगुण वृद्धि का फल है। श्रद्धावान व्यक्ति श्रद्धा के आधार पर अपने सभी कार्य सिद्ध कर लिया करता है। दूसरी बात है मनुष्य को अज्ञानी नहीं होना चाहिये, उसे ज्ञानवान होना चाहिये। तीसरी बात है वह संशयात्मा न हो। संशय होने पर मनुष्य सोचने लगता है– गुरुदेव ने जो मंत्र दिया है, ठीक भी है या नहीं। ध्यान की विधि बताई है, इससे मेरा कल्याण होगा या नहीं– इस प्रकार से संशय से ग्रस्त हो जाता है। साधारण लोकोक्ति भी है **' दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम '**। संशय दुविधा में डाल देता है। हमने एक लड़के को योग दीक्षा दी। वह पढ़ा लिखा नहीं था, तथा संशयात्मा भी था। उसको अपने मन्त्र पर विश्वास नहीं रहा। अपने संशय को किसी धर्म प्रचारक के सामने रखा। उस प्रचारक ने उसे बहका दिया। यह मन्त्र गृहस्थियों को तो जपना ही नहीं चाहिये। क्योंकि वह लड़का पढ़ा लिखा नहीं था, योग शास्त्रों का ज्ञाता नहीं था इसलिये संशय हुआ। वेद उपनिषद तो इस मन्त्र के विषय में कहते हैं– **हंस हंस इत्यमुम मन्त्रम् जीवो जपति सर्वदा। अनया सदृशी विद्या, अनयास्दृशो जपः। अनया सदृशं मन्त्रं न भूतो न भविष्यति**। अर्थात्! 'हंस हंस' इस मन्त्र का जीव सदा जप करता है। इस के समान न कोई विद्या है, न कोई जप है और न कोई मन्त्र है, और न ही होगा। ऐसी इस मन्त्र की महिमा वेद शास्त्र में गाई गयी है। किन्तु उसे बता दिया कि यह गृहस्थियों को नहीं जपना चाहिये। इधर अज्ञानी था साथ में श्रद्धाविहीन था और साथ–साथ संशयात्मा हो गया। ऐसे लोगों के विषय में भगवान के स्वयं के शब्द हैं **अज्ञश्च अश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति**। मनुष्य अज्ञानी हो अश्रद्धालु हो और संशयात्मा हो तो उसका पतन हो जाया करता है। देखो! दो बातें होती हैं, योगदर्शन का एक सिद्धान्त है' **निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्राद्** ' योगी जब अस्मितानुगत समाधि में पहुँच जाता है तो उसमें चित्त बनाने की योग्यता आ जाती है। वह अपने अनेकों चित्त बनाकर एक साथ हजारों के पास जाकर मिल सकता है। बातचीत कर सकता है इस प्रकार ध्यान योग के विज्ञान

से वह हजारों व्यक्तियों के जो भाव हैं वह उसके चित्त में आ जायेंगे। यह तो है चित्त निर्माण का फल। और जिसको चित्त निर्माण करना आ जायेगा समय पर उसको काय निर्माण भी करना आ जायेगा। इस प्रकार वह अपने अनेकों शरीर बना सकता है। मैंने तुम्हें बताया हुआ है कि आनन्द कन्द श्री प्रभु जी जब नैपाल हिमालय से आये तो कम से कम 25–30 शरीर धारण करके काय निर्माण करके आये। हम लोगों ने जिनकी चरण शरण ग्रहण की है यह तो उनका निर्मित शरीर था। नैपाल में जो शरीर है वह अब भी समाधिस्थ ही है। तुम यह मत सोचो कि प्रभु जी कहीं चले गये वह तो काय निर्माण से आये थे और काय निर्माण से ही चले गये। अभी छः सात वर्ष पूर्व हमारा एक साधक बच्चा तपस्या करके नैपाल हिमालय में पहुँच गया। वहाँ एक ब्रह्मचारी योगी मिल गये। उस साधक से पूछा–बेटा ! तुम योगिराज चन्द्र मोहन जी के बालक हो ? उसने उत्तर दिया– हाँ ! महाराज, मैं उनका ही शिष्य हूँ ! उस ब्रह्मचारी ने कहा–तुम यहाँ प्रभु जी की याद में पड़े हो, चलो ! प्रभु जी ने तुम्हें याद किया है। वह योगी उस बालक को आकाश मार्ग से पलभर में ही वहाँ ले गये जहाँ प्रभु जी की स्फटिक मणि की गुफा है। वहाँ प्रभु जी समाधि से उठे हुये थे। उस साधक को देखकर उन्होंने कहा –

तुम हमें याद कर रहे थे हमने तुम्हें बुला लिया। तुम हमें छूना नहीं। बस, तुम्हें दर्शन हो गये' ब्रह्मचारी से कहा – छोड़ आओ इसको वहीं पर जहाँ से लाये हो ! ब्रह्मचारी उन्हें नीचे छोड़ गया। हमारा वह साधक मौजूद है तुम पूछोगे तो सारी घटना बता देगा। मेरे कहने का अभिप्राय है कि प्रभु जी नैपाल धाम में अब भी मौजूद हैं। यहाँ पृथ्वी पर काय निर्माण करके आये। खैर ! चित्त निर्माण करने की योग्यता योगी में आ जाती है। यह तो है योग की बात ! योग में जिसका ऊँचा प्रवेश नहीं है क्या वह भी चित्त निर्माण कर सकता है ? हाँ कर सकता है, उसका एक तरीका है। वह हमारे तुम्हारे चित्त भी बनवा सकता है। अपने तो क्या करेगा वह–किन्तु यदि उसके अन्दर पूर्ण श्रद्धा है संशयात्मा नहीं है, ज्ञानी, वेद–वेदान्त का ज्ञाता हो तो बहुत ही अच्छी बात है, न भी हो किन्तु श्रद्धा भरपूर हो और उसके मन में किसी प्रकार का संशय भी न हो तो वह हमारे तुम्हारे चित्त भी बना सकता है। जिसके प्रति उसकी श्रद्धा है, विश्वास है वह उसका चिन्तन करेगा। यह हम श्री प्रभु जी का चित्र सामने रखकर क्यों बैठते हैं ? मैंने कल अपने व्याख्यान में बताया था – **नास्ति तत्वं गुरोः परम्** मैंने योग के नौ विघ्नों का वर्णन किया था और उनको हटाने का उपाय बताते हुये कहा था– **तत्प्रति षेधार्थम् एक तत्वाभ्यासः**। विघ्नों को दूर करने के लिये एक तत्व का – मूल तत्व काका अभ्यास करें– जो सबसे बड़ी ताकत है। उसका चिन्तन करें तो स्वाभाविक विघ्न नाश होता है। तो वह व्यक्ति जिसमें श्रद्धा है, **श्रद्धा माते कल्याणी योगिनम् पाति**, श्रद्धा माँ की तरह योगी का सम्हाल करती है वह सब कुछ पाता है–उसके लिये एक नियम चलता है– ' **कृतार्थम्प्रति नष्ट मप्यनष्टम् तदन्य साधारणत्वात्** ' महापुरुष जो मुक्त हो चुके हैं श्रद्धालु व्यक्ति कहीं पर बैठ कर उनका चिन्तन करता है। श्रद्धा करके अपने मन में उसकी मूर्ति का ध्यान करता है तो उसके फलस्वरूप उनका निर्माणित चित्त

उनकी ओर से कुदरती ईश्वर की ओर से बना हुआ चित्त उस पुतले में आवेशित हो जाता है इसके फलस्वरूप वह पुतला बोलेगा, बात करेगा, शिक्षा देगा, कृपा करेगा। एकलव्य कुमार को ऐसा ही हुआ था।

द्रोणाचार्य ने अर्जुन को वचन दिया था तेरे समान धनुर्विद्या का गुण किसी को नहीं दूँगा ! एकलव्य को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखाने से इन्कार कर दिया। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना ली उसे ही गुरु मान कर श्रद्धा पूर्वक विद्या का अभ्यास करता रहा। एक दिन अर्जुन और एकलव्य का आमना–सामना हो गया। एकलव्य ने अर्जुन के सारे बाण काट दिये। अर्जुन ने उससे पूछा–तू किसका शिष्य है ? उसने कहा–मैं द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। अर्जुन जाकर अपने गुरुदेव से पूछने लगा–गुरुदेव ! आपने तो वचन दिया था तेरे बराबर विद्या मैं किसी को नहीं दूँगा किन्तु उस भील के लड़के को तो आपने मुझ से ज्यादा गुणी बना दिया है। द्रोणाचार्य ने कहा–मैं उसे नहीं पहचानता तुम मुझे उसके पास ले चलो। वहाँ पहुँच कर द्रोणाचार्य ने एकलव्य से पूछा–बेटा ! तुम किसके शिष्य हो ? तुमने यह बाण विद्या किससे सीखी है ? एकलव्य ने उत्तर दिया–गुरुदेव मैं आपका शिष्य हूँ। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बना रखी थी, उसी का ध्यान करके अभ्यास करता था ? वह मूर्ति क्रियात्मक हो गई उसकी श्रद्धा के कारण वह बना हुआ चित्त उस मूर्ति में प्रवेश हो गया। द्रोणाचार्य को इस बात का ज्ञान नहीं हुआ किन्तु उनके बने हुये चित्त ने एकलव्य को सारी विद्या सिखा दी ! उसने योग विज्ञान से विद्या सीखी थी किन्तु अन्याय हुआ उसके साथ ! द्रोणाचार्य ने कहा–यदि तू मेरा शिष्य है तो गुरु दक्षिणा में अपने दाँये हाथ का यह अँगूठा काट कर दे दे। उसके दाँये हाथ का अँगूठा मांग लिया। कायदे से तो द्रोणाचार्य ने विद्या सिखाई नहीं थी। उसने अपनी श्रद्धा से, योग शक्ति से द्रोणाचार्य के चित्त का आकर्षण करके उससे विद्या सीखी थी यह तो ब्रह्म ज्ञान था, ईश्वरीय सत्ता की बात थी। किन्तु माँगे जाने पर श्रद्धा के कारण उसने अपना अँगूठा काट कर दे दिया। अँगूठा काट लेने के बाद भी उसने अर्जुन से मुकाबला किया और उसके छक्के–छुड़ा दिये।

मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि एक योगी अपनी शक्ति से चित्त निर्माण करता है और दूसरा वह–श्रद्धा के आधार पर जिस पुतले का चिन्तन करेगा उसका निर्माणित चित्त आ जायेगा और सारे गुण उसको दे देगा। सबसे बड़ी खास बात यह है कि हमारी यह योग विद्या **परा विद्या** है। इससे बढ़कर कुछ नहीं है। इसलिये अपने मन को योग ध्यान परायण बनाओ, अपने गुरु मन्त्रों का जाप करो, किसी के बहकाने से मन इधर–उधर विचलित नहीं करना। **अज्ञश्च अश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति** जो यज्ञ है श्रद्धा रहित है और संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। कल मैंने अपने एक लड़के का उदाहरण देते हुये इस बात को बताया था। उस लड़के को हमनें लाहौर में योग दीक्षा दी थी। दीक्षा लेने के बाद उसे बड़े–बड़े अनुभव होने लगे। भगवान राम, कृष्ण एवं शिव के दर्शन ध्यान में होने लगे। उसने आकर जय दयाल गोयन्दका से अपने ध्यान के विषय में पूछा–देखो! ऋषिकेश में गंगा

किनारे झाड़ियों में केशवानन्द अवधूत रहते थे। जब दयाल उनके दर्शन करने के लिये गये उन्होंने इन्कार कर दिया। दर्शन नहीं देंगे। इसके बाद भगवान कृष्ण ने केशवानन्द से कहा कि यह मेरा भक्त है इसको दर्शन दो–केशवानन्द ने बात मान ली बाहर आकर दर्शन दे दिया। हमारे उस बच्चे ने जय दयाल से पूछ लिया हमारा यह ध्यान कैसा है ? उन्होंने कहा–नहीं, यह ध्यान नहीं माया है ! उस लड़के ने ध्यान का अभ्यास छोड़ दिया। उसका नाम सदानन्द है। गोरा–गोरा नाटा सा है। मुझे एक बार बाद में भी वृन्दावन में मिला था,हमसे कहने लगा गुरुजी ! अब मेरा ध्यान ही नहीं लगता ! हमने कहा – प्रभु जी की कृपा से स्थिति बनी थी, वह तुमने खो दी ! अब तो पुरुषार्थ से ही स्थिति को बनाओ। इस प्रकार संशय करने पर अपनी स्थिति को वह खो बैठा। इसलिये ' **अज्ञश्च अश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति** ' अर्थात् जो मनुष्य अज्ञानी है, श्रद्धारहित है तथा संशयात्मा है वह नष्ट हो जाता है। इसलिये श्री प्रभु जी के चरणों को अपने हृदय में धारण करके अपने आप को योग मार्ग की ओर लगाओ। तुम इस समय प्रयाग क्षेत्र में रह रहे हो। पुराणों में प्रयाग क्षेत्र की बहुत महिमा लिखी है। वे सब सत्य है। ऐसा कोई कुम्भ नहीं होता जिसमें सिद्धयोगिराज नहीं आते। सिद्ध लोग आते हैं पर गुप्त रूप से रहा करते हैं। उनको हर व्यक्ति पहचान नहीं सकता। हर व्यक्ति जान नहीं सकता। मनुष्य की तरह सामने आकर चले जाया करते हैं। तुम इस ब्रह्म क्षेत्र के अन्दर तीर्थ राज के अन्दर रह रहे हो। अब की बार हम भी लगभग डेढ़ या दो माह यहाँ रहे ही रहे। हम तुम्हें यहाँ नियमित योगोपदेश कर रहे हैं। हमारे उपदेश के अनुसार जिन लोगों ने अपने गुरु मन्त्रों का जाप किया होगा। यह निश्चित बात है उनको सिद्धानुकम्पा प्राप्त हुई। सिद्ध लोग देख लेते हैं कौन क्या कर रहा है। जो साधना करता है उस पर उनकी कृपा हो जाया करती है। वह सहायता मिल जाती है जिस सहायता के कारण उसका उत्थान हो जाया करता है और वह कल्याण की ओर बढ़ जाता है। श्री प्रभु जी सिद्धों के भी महासिद्ध हैं इसमें कोई शंका की बात नहीं। मैंने कई बार बताया है कि ऋषिकेश में शीशम झाड़ी में केशवानन्द रहा करते थे। वे अन्तर्द्रष्टा थे। उन्होंने प्रभु जी के बारे में मुझ से कहा था – " ये लोग तो कभी हिमालय छोड़ते ही नहीं। ये यहाँ हैं तो कैसे हैं ? बड़े आश्चर्य की बात है ?" उन सर्वशक्तिमान के चरण तुम लोगों के लिए गये हैं। वे नैपाल में बैठे हुये अपने हर बच्चे को देखते हैं। उनके चरणों का ध्यान करते हुये उठते बैठते, चलते फिरते हर समय मन्त्र का जाप करो। ऐसा करोगे तो कोई भी, किसी भी प्रकार की दिक्कत की बात सामने नहीं आयेगी। इसलिये अपने अभ्यास को बढ़ाओ।

# श्री मद्वाल्मीकि रामायण और योग

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

(गतांक से आगे)

बालकाण्ड के बाद रामायण के अनुसार अयोध्या काण्ड प्रारम्भ होता है। इस काण्ड के आरम्भ में ही राजा दशरथ भरत और शत्रुघ्न जो अपने मामा के यहाँ गये हुये हैं उन्हें वापिस लाने के लिये दूत भेजते हैं। इधर श्री राम को युवराज बनाने की इच्छा से राजदरबार में सभी मन्त्रियों को बुलाकर अपने निर्णय को बताकर सभी से राय माँगते हैं।–

राजा दशरथ कहते हैं – " मेरा ज्येष्ठ पुत्र राम धर्म परायण है। सारी प्रजा उन्हें युवराज के रूप में देखना चाहती है। उनके युवराज बनने से त्रिभुवन में शान्ति एवं सुख का साम्राज्य रहेगा।" सभी मन्त्री राजा दशरथ के मत का एक स्वर से समर्थन करते हैं। इस प्रकार से सभी की दृष्टि में श्री राम एक उपयुक्त व सशक्त युवराज घोषित होते हैं। राजा दशरथ कहते हैं – "यह चैत्र का मास बड़ा ही सुहावना है। चारों ओर सुन्दर–सुन्दर सुगन्धित पुष्प खिल रहें हैं" इस प्रकार से राम के राज्याभिषेक की सम्पूर्ण तैय्यारियाँ हो रही हैं। राजा दशरथ श्री राम को दरबार में बुलाकर उपदेश देते हैं –

**भूयो विनयमास्थाय भव नित्यं जितेन्द्रियः**
**काम क्रोध समुत्थानि त्यजेथा व्यसनानि च।**

हे राम! तुम विनयशील रहते हुये नित्य जितेन्द्रिय रहो। काम और क्रोध से उत्पन्न वृत्तियों का त्याग करो और जीवन में कोई व्यसन न रहे इस बात का पूरा ख्याल रखो। दूसरे दिन श्री राम का राज्याभिषेक होना है इसलिये शहर में चारों ओर उजाला ही उजाला है। सभी नगरवासी खुशी में उत्सव मना रहे हैं। महलों में चहल–पहल को देखकर कूबड़ी मन्थरा धात्री से पूछती है कि यह सब चहल–पहल एवं खुशी का वातावरण किस कारण से है? धात्री मन्थरा को बताती है कि कल श्री राम का राज्याभिषेक होने वाला है उसकी सब तैय्यारी चल रही हैं। इस समाचार को सुनकर मन्थरा जो स्वभाव से ही अत्यन्त दुष्ट प्रवृत्ति की है क्रुद्ध होकर सीधे कैकयी के महल में पहुँच जाती है। सोती हुई कैकयी से कहती है। रे मूढ़ ! तू यहाँ सो रही है। कल श्री राम का राज्याभिषेक होने वाला है। राजा दशरथ बड़ा क्रूर है। राजा लोग ऐसे ही होते हैं। तुम्हारा पति मीठी–मीठी बातें करते हैं, धर्म की बाते हैं किन्तु शठ हैं, क्रूर हैं। तुम उन्हें अच्छे मन के आदमी समझती हो, इसलिये तुम ठगी जा रही हो। तुम्हारा दुष्टात्मा पति भरत को अपने रिश्तेदारों के यहाँ भेजकर प्रातः ही राम का राज्याभिषेक कर रहे हैं ताकि वह निष्कंटक होकर सब काम कर सकें। मन्थरा के इन वचनों को सुनकर कैकयी राज्याभिषेक की बात सुनकर

प्रसन्न हुई और बहुत से आभूषण मन्थरा को देने लगीं। कैकयी कहने लगी – मैं भरत और राम में कोई भेद नहीं समझती।

निम्न श्लोक पढ़िये–

**" धर्मज्ञो गुरुभिर्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक् शुचिः**
**रामो राज्ञः सुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति। "**

अर्थात् "श्री राम धर्मज्ञ हैं। गुरुओं से भली भाँति अनुशासित हैं, कृतज्ञ हैं, सत्यवादी तथा पवित्र हैं राम अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण युवराज होने के अधिकारी हैं। राम मुझे अपनी माँ कौशल्या की तरह ही मानते हैं। मुझे वह प्रिय भी हैं। यदि राज्य श्री राम को मिलता है तो वह भरत को मिला ही मानती हूँ। क्योंकि राम भरत को अपनी आत्मा की तरह मानते हैं।" कैकयी के इन वचनों को सुनकर मन्थरा अत्यन्त दुःखी होती है और लम्बी साँस लेती हुई कैकयी से कहती है। ' राम को राज्य मिलने के बाद भरत राजवंश से दूर कर दिये जायेंगे। इसलिये तू श्री राम को राजगृह से दूर करके वन को भेज दे। इस प्रकार से मन्थरा कैकयी को बहुत उकसाती है और कोसती है। मन्थरा के वचनों का कैकयी पर प्रभाव पड़ता है वह अपने बिस्तर से झट उठकर कहती है– मन्थरा! ऐसा कोई उपाय बताओ जिससे राज्य भरत को ही मिले और राम को किसी भी प्रकार से न मिले'। मंथरा कहती है– हे अश्वपति की पुत्री! तू क्रोधागार में प्रवेश कर। वहाँ गन्दे व फटे कपड़े पहनकर जमीन पर क्रुद्ध नारी की भाँति पड़ जाना। तुम अपने पति के बहुत प्रिय हो। तुम्हारे लिये वह आग में भी कूद जायेंगे। वह तुम्हें नाराज नहीं देख सकते। वे वास्तव में तुम्हारे लिये अपनी जान भी दे देंगे। तुम राजा दशरथ को दैवासुर संग्राम के समय दिये हुए अपने दो वरदान का याद दिलाना। तुम राजा दशरथ से राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत के लिये राज्य मागँना।" इतने में ही राजा दशरथ कैकयी के महल में पहुँच जाते हैं। वहाँ पर वृद्ध राजा दशरथ ने जमीन पर पड़ी हुई, मैले कुचेले कपड़े पहने कैकयी को देखा। राजा दशरथ ने कहा– तुम्हारी क्या इच्छा है कहो। मैं अपनी जिन्दगी देकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा'। राजा के इन वचनों को सुनकर कैकयी प्रसन्न होकर उठ खड़ी हुई और बोली महाराज! दैवासुर संग्राम के समय दिये हुये अपने दो वर याद करो। पहले वर के रूप में मैं तुरन्त भरत का राज्य अभिषेक चाहती हूँ और दूसरे वर में मैं राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास।" कैकयी के इन क्रूर वचनों को सुनकर राजा दशरथ के नेत्र क्रोध में लाल हो गये और वे कैकयी से बोले–

**नृशंसे दुष्ट चरित्रे कुलस्यास्य विनाशिनी**
**किं कृतं तव रामेण पापे पापं मयाऽपि वा।**

हे नृशंस व कुलघातिनी पापयुक्त स्त्री! राम ने तुम्हारा क्या बुरा किया है और मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है। मेरा राघव तुमसे माँ की तरह व्यवहार करता है फिर तुम उसके नाश के लिये तुली हुई हो। सारे संसार के लोग राम के दिव्य गुणों का गुणगान कर रहे हैं। मैं किस अपराध के

कारण अपने पितृवत्सल पुत्र का त्याग करूँगा।

**कौशल्यां वा सुमित्रां वा त्यजेयमपि वा श्रियम्।**

**जीवितं वाऽऽत्मनो रामं न त्वेव पितृवत्सलम्।**

मैं कौशल्या को, सुमित्रा को, राज्यलक्ष्मी को तथा अपने शरीर का भी त्याग कर सकता हूँ किन्तु मैं पितृवत्सल राम का त्याग नहीं कर सकता। राजा दशरथ आगे फिर कहते हैं–

**तिष्ठेल्लोको विना सूर्यं सस्यं वा सलिलं विना।**

**न तु रामं विना देहे तिष्ठेत्तु मम जीवितम्।**

संसार सूर्य के बिना हो जाये, धन–धान्य पानी के बिना हो जाये किन्तु मैं राम के बिना जीवित नहीं रह सकता हूँ। कैकयी क्रोधित होकर कहती है। यह धर्म हो या अधर्म, सत्य हो या असत्य किन्तु मैं राम को वनवास के अतिरिक्त कुछ सुनना नहीं चाहती'। राजा दशरथ ने कहा– मैं हाथ जोड़ता हूँ, तेरे पैर पकड़ता हूँ किन्तु राम के लिये वनवास की बात मत कहो। यदि राम को वनवास हुआ तो युगों–युगों तक मानव जाति तुझे कोसती रहेगी। यदि भरत की सहमति राम के वनवास में होगी तो मेरी मृत्यु पर भरत मेरा दाह संस्कार भी न करे। हे देवी! कृपा करो। राम को राज्य एक भेंट के रूप में दे दो। यदि ऐसा करोगी तो तुम्हें परम यश मिलेगा। तुम मुझे, श्री राम और गुरुजनों व दुनियां को प्रसन्नता देने वाला काम करो इस पर कैकयी क्रुद्ध होकर कहने लगी। तुम पहले वर देकर फिर उसे पूरा न करके इस प्रकार जमीन पर पड़ गये हो। तुम ऐसे पड़े हुये हो जैसे कि तुमने कोई बड़ा अपराध किया हो। तुम्हें धर्म का आचरण करना चाहिये। सत्य को ही परम धर्म कहा गया है तुम्हें सत्य पर चलना चाहिये और राम को वनवास देना चाहियें'। प्रातः काल होते ही सूत को बुलवाकर राजा ने कहा– श्री राम को हमारे पास बुला लाओ "। सुमन्त्र श्री राम को कैकयी के मंहल में ले आते हैं वहाँ पर श्री राम ने अपने पिता को बहुत उदास और चिन्तित देखा। अपने पिता को तथा कैकयी को आदर पूर्वक प्रणाम करके श्री राम ने पूछा– पिताजी, क्या अनजाने में मुझ से कोई अपराध हो गया है? आप की यह दयनीय दशा क्यों हो गई है? राजा दशरथ जब कुछ नहीं बोले तो श्री राम जी ने कैकयी से पूछा–पिता जी की यह दयनीय दशा क्यों हो गई है? कैकयी बोली 'राम! तुम्हारे पिताजी किसी पर कुपित नहीं हैं। तुम अपने पिता जी को अत्यधिक प्रिय हो अतः यह तुम्हारे विषय में अप्रिय नहीं बोल सकते। यदि राजा ने जो कुछ कहा है तुम उसका पालन करोगे तो मैं बताती हूँ। यह कुछ बता नहीं पायेंगे। श्री राम ने कहा–तुम अवश्य बताओ। मैं इनके लिये आग में कूद सकता हूँ; विष खा सकता हूँ और समुद्र में भी छलांग लगा सकता हूँ। श्री राम कैकयी से कहते हैं आप राजा की इच्छा को अवश्य मुझे बताइये मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा। 'रामो द्विर्नाभिभाषते' राम दो बार नहीं बोलता है। श्री राम के इस प्रकार कहने पर दुष्ट कैकयी ने क्रूर वचन कहने शुरू कर दिये। राघव! प्राचीन काल में तुम्हारे पिता के द्वारा मुझे दो वर दिये गये थे देवासुर संग्राम में मैंने इनके शरीर से बाण निकाले थे और इनके प्राण बचाये थे। उसी वर के रूप में मैंने इनसे भरत का

राज्याभिषेक और तुम्हारे लिये वनवास माँगा था। इसलिये तुम चौदह वर्ष के लिये वनवास करो और भरत का राज्याभिषेक हो। इस प्रकार के दारुण वचनों को सुनकर राम को कोई दु:ख नहीं हुआ। उन्होंने कहा मैं अवश्य ही महाराज के प्रतिज्ञा को पूर्ण करुँगा। मैं चौदह वर्ष तक वल्कल वस्त्र धारण किये, जटा रखाये पिता की आज्ञा का पालन करुँगा। मैं भरत के लिये सीता को, राज्य को, धन को तथा अपने अमूल्य जीवन को भी खुशी–खुशी त्याग दूँगा–

**"अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्ठान् धनानि च "**

**मैं भरत के लिये खुशी–खुशी सब छोड़ दूँगा।**

**नाहमर्थपरो देवि लोकमावस्तु मुत्सहे।**

**विद्धि मामृषिभिस्तुल्यं केवलं धर्मास्थितम्।**

मैं इस दुनिया में, सुख व आनन्द के लिये नहीं रहना चाहता। मुझे तुम ऋषियों की तरह ही समझे। केवल धर्मनिष्ठ हूँ मैं। पिता की आज्ञा से मकर मेरे लिये कोई महत्तर कार्य नहीं हैं। यद्यपि मेरे पिता ने अपने मुख से नहीं कहा है फिर भी मैं चौदह वर्ष के लिये वनवास में जाऊँगा। अभी मैं अपनी माता से तथा सीता से विदाई लेने के बाद आज ही मैं वन को प्रस्थान करुँगा। भरत प्रजा का पालन करे तथा पिता श्री की सेवा करे यही सनातन धर्म है। इसके बाद श्री राम ने अपने पिता दशरथ तथा कैकयी की प्रदक्षिणा की और महल से बाहर निकल आये। श्रीराम अपने शुभचिन्तकों से साहस पूर्वक खुशी–खुशी मिले और अपनी माँ कौशल्या के पास गये माँ के चरण चूम कर श्री राम थोड़ा हिचकियाकर बोले। माँ! तुम नहीं जानती तुम्हारे लिये, सीता के लिये तथा लक्ष्मण के लिये बड़ा दु:ख उपस्थित हो गया है। महाराज ने भरत को युवराज बना दिया है और मुझे दण्डकारण्य में भेज दिया है। इन वचनों को सुनते ही कौशल्या कटे हुये शाल के वृक्ष की भाँति जमीन पर गिर गई और बेहोश हो गई।

(क्रमशः)

**न अभिषेको न संस्कारो सिंहस्य क्रियते वनैः।**

**विक्रमार्जित उर्जस्य स्वयमेव मृगेन्दता।।**

वन में सिंह का न तो कोई अभिषेक करता है और न ही संस्कार। अपने विक्रम से ऊर्जा का एकत्रीकरण करके सिंह स्वयं ही मृगेन्द्र बनता है।

# अवलोकन का सुख

-- डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी (उपाचार्य–मनोविज्ञान)
लेखक– स्वामी सुबोधानन्द (अन्तर्राष्ट्रीय अध्यात्मिक गुरु)

अवलोकन दो प्रकार का होता है। प्रथम– आप विचारों के माध्यम से संसार को देखते हैं और द्वितीय अपनी आत्मा के माध्यम से जो कि शुद्ध सत्य है। जब आप अपने अर्जित अथवा सीखे गये विचारों से संसार को देखते हैं तो आप को संसार में व्याप्त अति सूक्ष्म प्रदूषण की ओर से सावधान रहना चाहिए। विचार स्मृति से आते हैं और स्मृति पूर्व काल (भूतकाल) के अनुभवों का प्रकटीकरण है। चूँकि आप भूतकाल के माध्यम से वर्तमान देखते हैं अत: प्रदूषण संभव है।

यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या यह प्रक्रिया स्वाभाविक नहीं है? जिस क्षण हम यह स्वीकार करते हैं कि यह प्रक्रिया स्वाभाविक है उसी क्षण हम उच्चतर प्रत्यक्षीकरण की संभावनाओं को नकार देते हैं। फिर भी जीवन को देखने का एक असाधारण मार्ग भी है। क्या आपने नहीं देखा है कि विकलांग व्यक्ति अपने जीवन में असाधारण काम कर गुजरते हैं? मैं भी यही आपसे अपेक्षा रखता हूँ। प्रश्न उठता है कि क्या हम विचारों से बचें?

नहीं! जीवन में दोनों प्रकार की अनुभूति होती है। एक विचारों के माध्यम से और दूसरी शुद्ध चेतना से। अत: दोनों विधाओं में कुशलता प्राप्त करें ताकि आप बुद्धिमत्तापूर्ण चयन कर सकें। यदि आपने अपने अंतर से अवलोकन की शक्ति प्राप्त कर ली है तब स्वाभाविक रूप से आप विचारों की दृष्टि भी प्राप्त कर लेंगे और तब विचार तुम्हारे होंगे न कि तुम विचारों से आबद्ध। तब आप पायेंगे कि विचार आपकी स्मृति से नियंत्रित नहीं होंगे। यह स्थिति तब प्राप्त होगी जब आपने विचारों पर पूर्ण निर्भरता छोड़ दी हो।

**क्या यह स्थिति विशेष तकनीक या ध्यान से संभव है?**

इसके लिए आपको बांस अथवा बांसुरी की भांति खाली। मुक्त होना होगा। इस हेतु आप विचारों को आने जाने तो दें परन्तु उनसे अपना तादात्म्य न करें। इसे यों समझें कि सड़क पर गुजरने वालों को अथवा पेड़ से पत्ता गिरने को हम देखते तो हैं परन्तु निरपेक्ष भाव से देखते हैं (राग द्वेष विमुक्त होकर) यह निरपेक्ष दृष्टि (चॅपअम सववापदह) ही ध्यान है। खाली बांसुरी बनने पर ही दैवीय शक्ति का प्रवेश होगा और इसी शून्यता में पूर्णता की अनुभूति होगी। हम अपने मन को कैमरा बनाने की अपेक्षा दर्पण बनावें क्यों कि कैमरे में छवि सुरक्षित रहती है और यही छवियाँ अथवा स्मृतियाँ लगाव के कारण आत्मा को शरीर से आसानी से मुक्त नहीं होने देतीं। अत: मन को विचारों से मुक्त करने का प्रयास करें। यह सब प्रयास से संभव होता है और तब तुम्हें चमत्कार अनुभव होगा। तुम अपने को पंख की भांति हल्का अनुभव करोगे। आनन्द भीतर है वहाँ स्थान प्राप्त करें वही आपकी पीड़ाओं को भस्म करेगा।

# डॉ. जादौन पर अलौकिक कृपा

— जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

अखिल क़ोटि ब्रह्माण्ड नायक सद्‌गुरु देव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपने संस्कारित बच्चों को इस भीड़ भरे संसार से किस प्रकार आकर्षित करके अपनी करुण कृपा से उसके जीवन को अध्यात्म जगत में उतार कर, उन्हें योग मय जीवन जीने की कला प्रदान कर देते हैं एवं किसके साथ–किस जन्म का और कब संस्कार भुगतान कर देते हैं। यह रहस्य जानना अच्छे से अच्छे साधक के बूते से बाहर की बात है। या यह आराध्य देव जी की कृपा पर निर्भर करता है। जैसा कि भक्त शिरोमणी श्री तुलसी दास जी ने भी कहा है कि :–

**सोई जानई जेहि देहु जनाई।।**

हमारे त्रिलोकी नाथ महाराज अशरण–शरण पर एवं जो दीक्षित नहीं हैं, उन पर भी अकारण ही अपनी कृपा के बादल बरसाते रहे हैं। किसी ने यथार्थ ही कहा है कि :–

**माली चुनता फूल जिस तरह–फूलों भरी कतार से।**
**निज बच्चों को आपे खेंचते – भीड़ भरे संसार से।।**

इसी प्रकार का एक कृपा प्रसंग अपने श्री सिद्धयोग आश्रम संवाई धाम से सम्बन्ध रखने वाले हमारे अनुज गुरु भाई श्री दलबीर सिंह जादौन से सम्बन्धित है। श्री जादौन मूल रूप से इसी भाग्य शाली गाँव के स्थाई निवासी हैं। भाग्य शाली गाँव इसलिए है कि :–

**यस्मिन देशे वसे योगी–ध्यान योग विचक्षण:।**
**सो अपि देशो भवेत पूत किम पुनः तत् बान्धवा ।।**

अर्थात् जिस देश में एक योगी वास करता है, वह देश का देश पवित्र हो जाता है...... इत्यादि। यह प्रसंग सन् 1987 का है। लट्ठमार होली के पवित्र त्यौहार दिनांक सतरह मार्च 2014 को पवित्र तिलकोत्सव के मध्य आश्रम में पधारे श्री जादौन ने बताया कि मुझे सन् 2010 में श्री दास लाल जी महाराज से दीक्षित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आश्रम से जुड़ने का संयोग कुछ इस प्रकार बना कि बात उस समय की है, जब मेरी उम्र पन्द्रह वर्ष रही होगी। मुझे सर्दी – जुखाम और ऐलर्जी ने इस कदर जकड़ लिया था कि कई डाक्टरों से चिकित्सा लेने पर तनिक भी आराम नहीं हुआ। चूंकि इस सर्व शक्तिमान सिद्ध आश्रम की सुगन्ध दूर–दूर तक फैली हुई है अत: यातायात का राहगीर इस सिद्धयोग आश्रम को प्रणाम करके ही अपने गन्तव्य को जाता है। मैं भी इस पथ का अनुकरण करते हुए आते जाते आश्रम को मस्तक झुका लिया करता हूँ। घटना वाले दिन मैं अपनी चमकीली साईकिल पर सवार हो कर दवाई के नाम पर संवाई से ऐतमादपुर जा रहा था। आश्रम के सामने पहुँचने पर जैसे ही मैंने नमन किया तो अचानक क्या देखता हूँ कि (तब मैं बहुत नादान एवं परेशान था) अखण्ड मण्डलाकार नारायण स्वयं मेरे दादा

गुरू देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने पार्षदों के संग कहीं विहार करने के उद्देश्य से मुख्य गेट के बाहर की तरफ पधार रहे हैं। उनके दर्शन पाते ही मेरी बुद्धि ने मेरा साथ छोड़ दिया। मुझ अवाक को कुछ नहीं सूझ रहा था कि मैं नमस्कार करूँ.....चुप रहूँ...आगे बढ़ जाऊँ.....क्या करूँ...... क्या नहीं करूँ? देखिए, उस हृदय सम्राट–कल्पतरू की लीला, कि मेरी कर्मेन्द्रि ने फट–पट मुझे साईकिल से उतारा और मुझे श्री चरणों में दण्डवत गिरा दिया

**मेरे दाता के दरबार में–सब दुख दर्द मिटाए जाते हैं।**
**दुनियाँ के सताए लोग यहाँ–सीने से लगाए जाते हैं।।**

यही मेरे साथ हुआ भाग्य विधाता, आशुतोष करूणा सागर जी ने मुझे उठा कर अपनी पवित्र कोमल बाँहों में भर लिया। पश्चात अपनी एक भुजा से मेरी गर्दन लपेट कर एक तरफ को टहलते हुए मधुर वाणी से बोले, क्यों लल्ला–क्या बात है....कुछ परेशान से लगते हो...... ? मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। कोई यह स्वपन तो नहीं? फिर मैं कुछ संभल कर बोला,जी मैं बीमार हूँ। दवाईयों से आराम नहीं हो रहा है......। गुरू जी लाड़ प्यार से मुझे सहलाते हुए मधुर मुस्कान से बोले, लल्ला ठीक हो जाओगे, फिकर मत करो,प्रभू जी सब ठीक करेंगे......। वो दिन मेरे जीवन का सबसे भाग्यशाली रहा। मैं फर्स से अर्स पर आ गया। मुझे पूर्ण आराम हो गया। आज इस बात को 27 वर्ष हो गए, कोई रोग नहीं हुआ। मेरा भाग्य भले ही छोटा हो पर मेरी अभिलाषाएँ बड़ी–बड़ी हैं।

**बलिहारी गुरू आपको, घड़ी–घड़ी सौ बार।**
**ऐसो दर्श दे दियो करत न लागी बार।।**

समय का चक्र अपनी गति से चलता रहा। कहते हैं कि गुरू जी मेहरबान तो चेला पहलवान। दिनांक 20.11.99 को मैं श्रीमति साधना देवी के साथ विवाह सूत्र में बँध गया। हुआ यूं कि ग्वालियर निवासी मेरे आदरणीय ससुर श्री भगवान सिंह का परिवार सहित अपने लीलाधारी सिद्धों के सम्राट श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के दर्शनार्थ आना बराबर रहा है। साधना जी को अपने लड़कपन से ही श्री सिद्धगुफा की रज तथा श्री गुरूदेव भगवान के अभय दायिनी गोद में लाड़–प्यार पाने का सौभाग्य जन्म जात रहा है। इसी हँसी खुशी, लाड़ प्यार के मध्य अन्तर्यामी त्रिकाल दर्शी महाराज जी ने साधना के विवाह की आंकलन के मध्य मेरे नाम की आशीर्वात्मक चर्चा मेरे ससुर श्री भादोड़िया जी से की थी, जो समय आने पर अकाट्य सत्य सिद्ध हुई। इन्हीं दिनों मैं गांव के सम्भ्रान्त श्रद्धालुओं के साथ सायंकालीन होने वाली जगत नियन्ता सर्वाधार, अखिल ब्रह्मण्ड नायक महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज एवं प्रात: स्मरणीय विभूषित योग योगेश्वर सिद्धों के सरदार गुरू देव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज की दिव्य आरती में नियमित रूप से सम्मिलित होने लगा। शीघ्र ही मैं आरती के रंग में रंग गया।

एक सायं आरती के समय मैं तल्लीनता से आरती में मग्न था तो क्या देखा कि आरती करने वाले महोदय (इस समय मेरे गुरूदेव श्री दासलाल जी महाराज) के हृदय में परं ब्रह्म

विश्वनाथ सर्व सिद्ध महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज विराज रहे हैं। फिर क्या देखता हूँ कि अखिलात्मा नारायण स्वयं बाँके बिहारीलाल जी महाराज कन्हैया रूप में श्री सिद्धगुफा में महा प्रभू जी की आरती कर रहे हैं। फिर क्या देखता हूँ कि हमारे पूज्य देव गण एवं ऋषि महात्मा लम्बी–लम्बी दाढ़ी वाले, जटा जूट जटाधारी, कोई गेरू एवं कोई पीत वस्त्रों में चन्द्राकार लाइन लगाए, आरती उतार रहे हैं। जब आरती जल का छींटा पड़ा तब सभी अन्तर्ध्यान हो गए। आरती अपनी गति से अमृत वर्षा करती रही। आरती के अन्तिम छोर में जब तक "प्रभोपाहि आपन्न मामीश शर्म्भो" की धुन चलती रही तब तक जटाधारी, चन्द मौली, नीलकंठ महादेव, नागेन्द्र हारी, डमरू वाले शिव शंकर भोले बाबा श्री सिद्धगुफा के सामने तांडव नृत्य करते रहे।

**ध्यान धारणा जब समाधी हो गया।**

**रोम रोम तब ध्यानास्थ हो गया।।**

मैं अनुगृहित हो गया। मुझे लगता है कि जब मैंने सर्व प्रथम श्री चरणों में दण्डवत प्रणाम किया था। उस समय काल चक्र , युग चक्र और जग चक्र को चलाने वाले आशुतोष जी ने अपना पवित्र कर कमल मेरे कन्धे में डाल कर अपने आराध्यगुरुदेव जगत नियन्ता श्री रामलाल जी महाराज की विरासत में मिली सिद्धयोग की अमूल्य धरोहर मुझ पर लुटा रहे थे, यह उसी का दिव्य प्रतिफल है। मुझे तो यही कटु सत्य लगता है कि :–

**उघरहिं विमल विलोचन हिय के।**

**मिटहि दोष दु:ख भव रजनी के।।**

**सूझहिं राम चरित मणिमानिक।**

**गुप्त प्रकट जहँ जो जेहि खानिक।।**

अर्थात् श्री गुरुदेव के चरण कमलों का ध्यान होते ही निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्री के दोष अर्थात् विविध प्रकार के सांसारिक कष्ट मिट जाते हैं तथा राम चरित्र रूपी गुप्त रत्नों के दर्शन होने लगते हैं। अर्थात् परमेश्वर के रहस्य भली भाँति समझ में आ जाते हैं।

**माता अहिल्या ने जैसे राम जी के कोमल चरण छू कर,**
**शबरी माता ने जैसे राम लखन के दर्शन पा कर,**
**महात्मा भरत ने जैसे श्री राम आने की खबर सुनकर,**
**जो आनन्द हुआ होगा, मुझे भी ऐसा ही आनन्द आरती के समय हुआ था।**

# श्री सिध्दयोग कृपा लीला

– ' कुंवर ' ए. के. सिंह, कछवा, मीरजापुर

" ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान् मूर्ति।
द्वन्दातीतं गगन सदृशं तत्व मस्यादिलक्ष्यम्।।
एकं नित्यं विमल मचलं सर्वधीसाक्षि भूतं।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तन्न नमामि।।

अर्थात् ब्रह्म के स्वरूप, आनन्द एवं परम सुख के दाता, केवल ज्ञान मूर्तिमय सुख व दु:खादि द्वन्द से रहित, आकाश तुल्य, वेद के " तत्वमसि " इत्यादि महावाक्य के लक्ष्य रूप, एक नित्य, निर्मल स्थिर, सर्व प्राणियों की बुद्धि के साक्षी एवं छः भावों विकारों से परे तीनों गुणों से रहित ऐसे दीनबन्धु, आनन्दकन्द श्री सद्गुरु देव जी के चरण कमलों को दण्डवत करता हूँ। पुनः

विश्व व्यापि नमामि देव ममलं नित्यं परं निष्कलं।
नित्योद्बद्ध सहस पत्र कमलं लुप्ताक्षरे मण्डपे।।
नित्यानन्द मयं सुखैकनिलयं नित्यं शिवं स्वप्रभं।
ध्यायेद्धंस परं परात्परतरं स्वच्छंन्द सर्वागमम्।।

संसार भर में व्यापक, निर्मल, नित्य, पर, निष्कल, नित्यशुद्ध–बोध स्वरूप, सहसदल–कमल में विराजित, नित्यानन्द स्वरूप, सुख–समुद्र नित्य, कल्याण कर्ता, अपनी प्रभा से प्रकाशित, पर, परात्पर, आत्म–स्वरूप स्वच्छन्द और सर्वत्र व्यापक है ऐसे श्री सद्गुरु के चरण कमल को बारम्बार दंडवत है।

ऐसे श्री सद्गुरु के चरण–शरण में रहने वाला सद्शिष्य श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपा से दिव्य अविनाशी जीवन प्राप्त कर अपने तथा अपने परिवार एवं समाज का कल्याण कर्ता और संसार को भी सुख का मार्ग दिव्य मार्ग दर्शाने में सफल होता है।

इसीलिए श्री भगवान अथवा श्री सद्गुरु कहते हैं–

" सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज:।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिस्यामि मां शुच:।।

अर्थात् सब धर्मो का आश्रय छोड़ कर मुझ शरणागत हो जा, हम तुम्हें सब पापों से छुड़ा कर मुक्त कर देंगे।

इसीलिए भगवान महादेव माँ जगदम्बा पार्वतीजी को समझाते हुए कहते हैं–

" ज्ञानशक्ति समारुढ़ स्तत्व माला विभूषित:।

मुक्ति मुक्ति प्रदाताय तस्मै श्री गुरुवे नमः।।
अनेक जन्म संप्राप्त सर्व कर्म विदाहिनेः।
स्वांत्मज्ञान प्रभावेण तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

अर्थात् हे पार्वती! ज्ञानशक्ति पर आरूढ़ सभी तत्वों की माला से विभूषित श्री सद्गुरुदेव ही भोग एवं मोक्ष दोनों ही फल प्रदान करने वाले हैं। उन कृपा वत्सल श्री सद्गुरु को नमन है। और जो अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से शिष्य के अनेक जन्मों से संचित सभी कर्मो को भस्म सात कर देते हैं, उन दयालु श्री गुरुवर को बारम्बार नमन है। पुनः भगवान भोले नाथ कहते हैं –

'न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्वम् ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

हे पार्वती! श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्व नहीं है। श्री गुरुदेव की चरणों की सेवा से बढ़कर कोई दूसरा तप नही है। उनसे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है। ऐसे कृपावर श्री सद्गुरुदेव के चरणों में बारम्बार नमन है।

श्री सद्गुरु चरणों की महिमा के वर्णन में सद्शिष्य की श्रद्धा–भक्ति तथा उसकी मनन चिन्तन इन दोनों ही तत्वों का मिश्रण है। श्री सद्गुरुदेव भगवान की कृपा लीला न केवल सर्वव्यापी है वरन् अपने बच्चों के सभी पूर्व संचित कर्मो को नष्ट करने में पूर्ण समर्थ है। इसलिए भगवान श्री भोलेनाथ जी माँ पार्वती को माध्यम बनाकर सम्पूर्ण जगत को यह उद्बोधन करते हैं कि सचमुच ही श्री गुरुदेव से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्व नहीं हैं। क्योंकि जो इस कर्मजाल के गूढ़तम, रहस्य को जानते हैं। और इस कर्म जाल के क्रूर एवं कुटिल कुचक्र से उबारने में श्री गुरुदेव ही समर्थ है। इसीलिए श्री रामचरीत मानस के रचनाकार गोस्वामी तुलसी दास जी ने कहा–

" गुरु बिनु भव निधि तरइ न कोई,
जो बिरंचि संकर सम होई।।

अर्थात् श्री गुरुदेव के बिना, इस संसार सागर से भवपार नहीं करा सकता, चाहे वो ब्रह्मा एवं शिव की भाँति समर्थ क्यों न हों। अर्थात् मानव जीवन के लक्ष्य को पूरा कराने में सिर्फ श्री गुरुदेव ही समर्थ हैं।

मूकं करोति वाचालं पंगुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्।।

हमारे श्री सिद्धयोग कृपा के अखण्ड मण्डलाकार विभूति प्रभु अखण्ड ज्योति श्री राम लालजी महाराज सर्वशक्तिमान् कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्त्तुम की शक्ति वाले अपने प्रिय भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए क्या नहीं करते। आवश्यकता सिर्फ इस बात की है कि वह उनके श्री

चरणों का अनन्य चिन्तन अनन्यनिष्ठ व्यक्तियों को सभी कुछ सुलभ होता है।

एक घटना परम योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के समय की है। संवाई गाँव में श्री प्रभुजी के चरणारविन्द के अनन्य अनुरागी परम गुरुभक्त ठा. भगवान सिंह थे। गाँव के सरल भोले भाले व्यक्ति थे। घर में आर्थिक तंगी थी। हमेशा अर्थाभाव था। किन्तु श्री प्रभुजी जी में अनन्य निष्ठा थी। समय–समय पर उनके साथ श्री प्रभुजी की विलक्षण कृपा लीला घटित हुआ करती थी। श्री ठा. भगवान सिंह श्री सिद्धगुफा की पवित्र रज को प्रतिदिन सेवन बड़ी ही श्रद्धा से करते एवं गुफा की वन्दना करना प्रतिदिन का कार्य था। ठा. भगवान सिंह के जीवन में एक घटना घटी। ठाकुर भगवन सिंह जी का कोई कार्य आवश्यक आ पड़ा जिसके लिए ट्रेन से बाहर जाना था। तथा उन्हें सूचना उस समय मिली जब उन्हें बाहर जाने के लिए कोई साधन नहीं था। और सूचना मिलने के बाद कुछ ही देर बाद स्टेशन से रेल (ट्रेन) था। जो गन्तव्य स्थान पर पहुँचा देती। किन्तु उनके घर से स्टेशन तक के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। उनकी मानसिक क्लेश अधिक हो गया। कि यदि स्टेशन तक पहुँच जाता तो मात्र 10 मिनट बाद जो ट्रेन खुलेगी उसी से गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाता और मेरा कार्य बन जाता, किन्तु कोई ऐसा साधन नहीं था और पर्याप्त समय भी नहीं था। इसी उधेडबुन में समय व्यतीत होता चला गया अब जो गाड़ी स्टेशन से खुलती थी मात्र 5 मिनट लेट थी। और वह स्टेशन गाँव से आठ मील की दूरी पर थी। 5 मिनट में 7 मील की दूरी तय करना असम्भव कार्य था। यदि कोई साधन भी मिलता तो इतने कम समय में इतनी दूरी तय नहीं कर पाता। भगवान सिंह जी अत्यन्त क्लेश से पीड़ित हुए, क्या किया जाय कोई उपाय नजर नहीं आता है। कार्य बहुत ही आवश्यक था, किन्तु सूचना इतने कम समय में मिली। क्या किया जाए?

**" जैसी होत होतव्यता तैसी उपजे बुद्धिः "**

कृपा सागर को जैसी कृपा करनी होती है वैसी ही बुद्धि सद्‌शिष्य के मन में बस कर देते हैं। ठाकुर भगवान सिंह जी को इस मानसिक क्लेश में अचानक आनन्द कन्द योग योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज का कृपा मय चरण कमलों का तीव्रतम स्मरण हो आया। श्री भगवान सिंह मन ही मन आर्तभाव से प्रार्थना की कि हे! दीनबन्धु आर्त हरण, हे सिद्धों के महा सिद्ध योग योगेश्वर प्रभु मेरी रक्षा करो किसी भी प्रकार मेरे गन्तव्य स्थान पर पहुँचाओ ताकि मेरा यह कार्य बन सके। भव भय हारी करुणा सागर योग योगेश्वर श्री प्रभुजी ने अपने बच्चे की आर्त्त पुकार सुनी। सहसा आकाश वाणी सुनाई पड़ी " बेटा चलो "। अकस्मात् ठा. भगवान सिंह ने श्री प्रभुजी के मुख वाणी सुनी और गद्‌गद् हो गए मन में यह निश्चय कर लिया कि जटा जूट धारी योगयोगेश्वर श्री प्रभुजी ने मुझे चलने का आदेश दे दिया, परिणाम वह स्वयं दीनबन्धु जाने। श्री प्रभुजी की आवाज सुन ठा. भगवान सिंह जी चल पड़े जैसे थे वैसे ही चल पड़े, पैदल! बड़ा ही आश्चर्य ज्यों ही वह कदम उठा कर आगे की ओर रखते थे उनका एक–एक कदम कई–कई फर्लांग पर पड़ता था वह जब चलते थे। जो व्यक्ति अभी एक क्षण के अन्दर 2–3 फर्लांग आगे

दिखाई पड़ता था वह कदम उठाते ही कई फर्लांग पीछे छूट जाता था। बड़ा भारी आश्चर्य की बात यह हुई कि देखते ही देखते 10–12 कदम चलने पर ही ठाकुर भगवान सिंह रेलवे स्टेशन पहुँच गये। स्टेशन पहुँचने पर घड़ी देखी तो महान आश्चर्य। वही 5 मिनट त्यों के त्यों बाकी थे ट्रेन छूटने में। यथा समय पहुँच कर टिकट लेकर भगवान सिंह ने यात्रा पूरी की। जिस कार्य की वह लक्ष्य करके गए थे, पहुँचते ही वह पूरी तरह सफल हो गया। परम कल्याण घन श्री प्रभुजी का अपने ऊपर इतना अनुग्रह देखकर ठा. भगवान सिंह कृतकृत्य हो गए और श्री कृपा निधान श्री प्रभुजी के चरण स्मरण में ही अपने मन को लगा दिया। इसीलिए भगवान शिवजी कहते हैं –

"गुरुभावः परं तीर्थमन्यतीर्थं निरर्थकम्।
सर्वतीर्थाश्रयं देवि पादा गुष्ठे च वर्तते।।

अर्थात् श्री सद्गुरु भाव परम तीर्थ है इसके बिना अन्य सारे तीर्थ निरर्थक हैं। सत्य तो यह है कि सारे तीर्थ श्री गुरुदेव के पाँव के अगूँठे में आश्रय ग्रहण करते है।

इन्हीं के साथ मेरे गुरुदेव अनन्त विभूषित योगयोगेश्वर श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के चरण कमलों में कोटिशः नमन।

### *कर्म साधन और ईश्वर प्राप्ति साध्य*

*प्रकृति का धर्म है कि वह तुमसे कर्म करा ही लेती है, चाहे तुम्हारी इच्छा हो या नहीं। जब ऐसा ही है, तब कर्म पूरी तरह से क्यों न किया जाय? कर्म अवश्य करो, परन्तु उसमें आसक्त न रहो। अनासक्त भाव से किया गया कर्म ईश्वर प्राप्ति का साधन है। अनासक्त कर्म को साधन और ईश्वर-प्राप्ति को साध्य वस्तु समझो।*

*– श्री रामकृष्ण परमहंस*

# श्री मद्भागवत में योग परिचर्चा

– डा. विजय सिंह

भगवान कपिल के उपदेश से माता देवहुती का अज्ञानान्धकार मिट गया। श्री कपिल जी, उपदेशोपरान्त माता की अनुमति लेकर, वन को प्रस्थान किये। इधर अपने आश्रम में पुत्र के उपदेश किये हुये साधन द्वारा योगाभ्यास करती हुई माता देवहुती समाधि में स्थित हो गई।

सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक्।

तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ।।13 ।।

मैत्रेय ऋषि ने विदुर जी से कहा– देवहूति जी ने भगवान कपिल द्वारा बताये योग साधन में लगकर थोड़े ही समय में नित्यमुक्त परमात्म स्वरुप को प्राप्त कर लिया। योगसाधना द्वारा उनके शरीर के सारे दैहिक मल दूर हो गये थे। वह एक नदी के रूप में परणित हो गयीं, जो सिद्धगण से सेवित और सब प्रकार की सिद्धि देने वाली है।

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित्।

स्त्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्ध सेविता ।।32 ।। (स्क.3 अ.33)

इधर भगवान कपिल पिता के आश्रम से ईशानकोण की ओर चले गये। जहाँ समुद्र ने स्वयं उनका पूजन किया और रहने का स्थान दिया। वहीं वे योगमार्ग का अवलम्बन कर समाधिस्थ हो गये। सिद्ध चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्य गण हर प्रकार से स्तवन करते रहते हैं–

आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः।

त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः।।35 ।। (स्क.3 अ.33)

कपिल देव जी का यह उपख्यान अध्यात्मयोग का गूढ़ रहस्य है। अब चतुर्थ स्कन्ध के प्रथम अध्याय में स्वायम्भुव मनु की कन्याओं के वंश का वर्णन आया है। देवहूती की कथा पूर्व स्कन्ध में वर्णित किया गया है। अब आकूति तथा प्रसूति इन मनु पुत्रियों से जन्म लेने वाले महा मनीषियों की कथा कही गयी है। आकूति का विवाह प्रजापति रुचि के साथ हुआ जिससे एक पुत्र साक्षात् यज्ञस्वरुप विष्णु तथा एक लड़की लक्ष्मी जी की अंशभूता दक्षिणा पैदा हुई।

श्री कर्दम जी की नौकन्याओं के वंश चरित्र का वर्णन विस्तार से किया गया है। अत्रि पत्नी अनसूया से दत्तात्रेय, दुर्वासा एवं चन्द्रमा तीन यशस्वी पुत्र हुये। योगवेत्ता भगवान दत्तात्रेय की अत्यन्त महिमा है। इसी अध्याय में दक्ष सुता सती जी महादेव से व्याही थी। सती ने युवावस्था में क्रोधवश अपने पिता के किये अपराध के कारण योग के द्वारा स्वयं ही अपने शरीर का त्याग कर

दिया था।

पितर्यप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रूषा।

अप्रौढैवात्मनाऽऽत्मानमजहाद्योग संयुता ।।66 ।। (स्कं.4, अ.1)

दूसरे अध्याय में भगवान शिव और दक्ष प्रजापति का मनोमालिन्य की कथा विवरण आया है। तीसरे अध्याय में सती का पिता के यहाँ यज्ञोत्सव में जाने का हठाग्रह की कथा कही गयी है। भगवान शिव के मना करने पर भी श्री सती जी ने दुराग्रह किया और पिता के उत्सव में गयीं। सामाजिक रिस्तों, अध्यात्म युक्त चित्त की दशाओं का विवरण आया है। शिव जी का अनादर पिता दक्ष द्वारा किये जाने को सहन न कर, सती जी ने अपने शरीर का योगविधि से त्याग कैसे किया वह विवरण योग की महत्ता प्रदर्शित करने वाली है।

देवी सती मौन होकर उत्तर दिशा में भूमि पर बैठ गयीं। उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ़ लिया तथा नेत्र बन्द कर शरीर त्यागने हेतु योगमार्ग में स्थित हो गयीं। आसन स्थिर कर प्राणायाम– द्वारा प्राण और अपान को एक रूप करके नाभिचक्र में स्थित किया। पुनः उदान वायु को नाभिचक्र से ऊपर उठाकर धीरे–धीरे बुद्धि के साथ ह्रदय में स्थापित किया। उस ह्रदयस्थ वायु को कण्ठ–मार्ग से भृकुटियों के बीच ले गयीं। इस प्रकार जिस शरीर का जगदवंदनीय शिव जी भी सन्मान करते थे, उसको दक्ष पर कुपित हो त्यागने की इच्छा से सती ने अपने सम्पूर्ण अंगों में वायु एवं अग्नि की धारणा किया। जगद्गुरु भगवान शंकर के चरण कमल का चिन्तन करते–करते सती ने सब ध्यान भुला दी, उन्हें अपने पति शिव जी के चरणों के सिवाय कुछ भी दिखायी न दिया। वे मैं दक्षकन्या हूँ, इस अभिमान से मुक्त हो गयीं और उनका शरीर तुरन्त ही योगाग्नि से जल उठा।

इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन्,
क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक्।
स्पृष्टया जलं पीतदुकूलसंवृता
निमील्य दृग्योगपथं समाविशत्।। 24 ।। (स्क.4, अ.4)

कृत्वा समानावनिलौ जितासना
सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः।
शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं
कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दितानयत्।। 25 ।।

एवं स्वदेहं महतां महीयसा
मुहुः समारोपितमङ्कमादरात्।
जिहासति दक्षरुषा मनस्विनी

दधार गात्रोष्वनिलाग्निधारणाम ।। 26 ।।

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं

जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम।

ददर्श देहो हतकल्मषः सती

सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ।। 27 ।। (स्कं.4 अ.4)

इस घटना से आश्चर्य चकित साधु पुरुषों ने दक्ष की घोर निन्दा किया और उन्हें शंकर द्रोही जानकर स्थान का त्याग किया। आगे की कथा सुधी पाठकों को ज्ञात ही होगा, कि वीरभद्र ने यज्ञ विध्वंस कर दक्ष का सिर काट कर यज्ञ कुण्ड में स्वाहा कर दिया। पूसा, भृग आदि को भी यथोचित दंड दिया। उस समय दक्ष पत्नि ने व्याकुल होकर रुदन करते हुए कहा– सारी कन्याओं के सामने हमारे पति ने निरपराध सती का तिरस्कार किया उसी का यह फल है। दक्ष के यज्ञ से पलायन किये हुये देवता श्री ब्रह्मा जी के साथ कैलास पर जाकर शंकर भगवान के शरणागत हो, उन्हें भाँति–भाँति के स्तुति से मनाने का प्रयास किया। छठे अध्याय में कैलास की महिमा वर्णित है। कैलास पर औषधियों, तप द्वारा, मंत्र द्वारा तथा योग द्वारा सिद्धि को प्राप्त हुये और जन्म से ही सिद्ध देवता नित्य निवास करते हैं। किन्नर, गन्धर्व और अप्सरा आदि सदा वहाँ रहते हैं –

जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैनरेतरैः।

जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ।।9 ।। (स्क.4 अ.6)

कैलास की मनोहरता का दिव्य वर्णन पठनीय है। कुछ अंस का अवलोकन इस लेख में भी पढ़ें – वहाँ निर्मल जल के झरने झरते हैं। मणिमय शिखर हैं। वृक्ष, लता, गुल्म छाये हुये हैं जिनमें फुंड–के फुंड जंगली पशु विचरते रहते हैं। बहुत सी गहरी कन्दरायें सिद्धों तथा सिद्धपत्नियों के निवास हैं। मोर का शोर, भ्रमरगुंजार, कोयलों की कुहू–कुहू ध्वनि एवं अनेक पक्षियों का कलरव वहाँ गूंज रहा है।

वहाँ एक विशाल वट वृक्ष की अपूर्व शोभा है। जहाँ स्वयं सदाशिव विराजते हैं। उसी महायोगमय और मुमुक्षुओं के आश्रय भूत वृक्ष के नीचे बैठे हुये शिव जी के समक्ष ब्रह्मादि देवता ने जाकर प्रणाम किया। वे शांत शिव जो जगत्पति हैं। सारे संसार के सुहृद हैं। सबका अहैतुक कल्याण कर्ता हैं। वे लोक हित के लिये समाधि धारण करते हैं –

तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणे सुराः।

ददृशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम्।। 33 ।।

विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम्।

चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमंगलम।। 35 ।। (स्कं 4 अ.6)

जिस समय ब्रह्मादि देवता कैलाश पहुँचे, उन्होंने देखा उसी वृक्ष के नीचे एक कुशासन पर भगवान शिव, भस्म, दण्ड, जटा और मृग चर्म एवं मस्तक पर चन्द्रकला धारण किये शांत बैठे हुये थे। उनका बाँया चरण दायीं जाँघ पर रक्खा था। वे बायाँ हाथ घुटने पर रक्खे, कलाई में रुद्राक्ष की माला डाले तर्क मुद्रा से विराजमान होकर अनेक सिद्ध, संतों को सनातन ब्रह्म का उपदेश दे रहे थे।

वे योगपट्ट का सहारा लिये एकाग्र चित्त से ब्रह्मानन्द का अनुभव कर रहे थे। लोक पालों सहित सभी देव, मुनियों ने भगवान शंकर के सामने जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम किये। ब्रह्मा जी ने कहा– देव मैं जानता हूँ, आप सम्पूर्ण जगत के स्वामी है। विश्व की योनि शक्ति (प्रकृति) और उसके बीज शिव से परे जो परब्रह्म है, वह आप ही हैं। आप ही सम्पूर्ण यज्ञों को पूर्ण करने वाले हैं। यज्ञ भाग पाने का भी पूरा अधिकार आपको है। दक्ष यज्ञ में बुद्धिहीन याजकों ने आपको यज्ञभाग नहीं दिया। इसी से आप द्वारा भेजे वीरभद्र ने यज्ञ विध्वंश किया। अतः प्रभो! आप कृपा करें जिससे दक्ष यजमान जी उठें, भगदेवता को नेत्र मिल जाय, भृगु जी की दाढ़ी मुद आ जाय और पूषा के पहले के ही समान दाँत निकल आयें। जिनके भी अंग भंग हुये हैं उन्हें आप अपनी कृपा से ठीक करने की कृपा करें। चतुर्थ स्कन्ध के सातवें अध्याय में भगवान शिव की कृपा से दक्ष यज्ञ पूरा होता है। ब्रह्माजी के प्रार्थना पर प्रसन्न होकर शंकर जी ने कहा – प्रजापते! यह थोड़ा दण्ड सावधान करने हेतु दिया गया है।

*स्नातं तेन समस्त तीर्थ सलिलैः सर्वापि दत्तावनि।*
*यज्ञानां च कृतं सहस्त्रमखिला देवाश्च संपूजिताः।।*
*संसाराच्च समुद्धताः स्वपितरस्त्रैलोक्य पूज्योऽप्यसौ।*
*यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्य मनः प्राप्नुयात्।।*

जिस भाग्यवान का मन एक क्षण भी ब्रह्म विचार में स्थिर होजाता है उसने मानो समस्त तीर्थों के जल से स्नान कर लिया है सारी भूमिदान कर दी है। सैकड़ों यज्ञ कर लिये हैं। सभी देवताओं का पूजन कर लिया है। अपने पित्तरों का संसार से उद्धार कर लिया है और वह त्रैलोक्यपूज्य भी हो जाता है।

# हमारे प्रभुजी सिध्देश्वर

– श्रीमती शारदा सज्जन सिंह सिसौदिया, भँवरकुँआ, इन्दौर (म.प्र.)

*हमारे प्रभुजी सिद्धेश्वर*
*सिद्धों को सरताज*
*हमारा शत शत मानस नमन वंदनहार*
*वो तो हैं जन जन के सिरजनहार*
*सुन लो हमारी दीन पुकार*
*तुम हो करुणा निधान*
*हमारी पत राखो भगवान।*

*वे ही हैं जन के घट घटवासी*
*फिर हमरा मन क्यों उदासी*
*वे हैं बिगड़ी बनाने वाले*
*रोतों को हँसाने वाले*
*तुम्हें हमारा शत–शत प्रणाम*
*मेरी पत राखो भगवान।*

*तुम हो बसंत की महकती मधुरम बयार*
*शरद की शीतल फुहार*
*बरखा की रिमझिम झंकार*
*मनवा करे बारबार पुकार*
*ह्रदय बीच बसो मेरे करुणानिधान*
*तुम्हारी जय होवे भगवान।*

*फाल्गुन के रंगों की सुखद मल्हार*
*कोयलिया कुहु–कुहु गाये*
*आनंद राग बरसाये*
*अवनी–अंबर झूम–झूम नाचे*
*मनवा करे बारम्बार पुकार।*

*तुम्हारी जय होवे भगवान*
*हमें दर्शन दो बारम्बार*
*हमारी यही दीन पुकार*
*सुन लो हमरे करुणानिधान*
*हमरी पत राखो भगवान ।*

# संसार का सत्य क्या है ?

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

परमात्मा की माया के दो रूप हैं, एक अविद्या तथा दूसरा विद्या। अविद्या माया संसार की ऐसी रचना करती है कि संसार मायानगरी की भाँति असत्य होते हुए भी चित्त में सत्य प्रतीत होता है। जिस प्रकार अन्धकार तथा प्रकाश का विरोध है, उसी प्रकार अज्ञान तथा ज्ञान का विरोध है। संसार अविद्या रूपी अज्ञान की उत्पत्ति है। शास्त्र का कथन है कि –

तस्मात् अज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्।
नित्य सर्वगतः हि आत्मा कूटस्थो दोषवर्जितः।।
अनिश्चिता यथा रज्जुः अन्धकारे विकल्पिता।
सर्पधारादिभिः भावैः तथात्मापि विल्पितः।।
स्वप्नमाये तथा दृष्टं गन्धर्वनगरं यथा।
तथा दृष्टमिदं विश्वं वेदान्तेषु विलक्षणैः।।
संसारः स्वप्नतुल्यो हि रागद्वेषादि संकुलः।
स्वप्नकाले सत्यवत् भाति प्रबोधे असत्वत् भवेत्।।
यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृत्द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।

अर्थात् शरीरधारियों का यह संसार अविद्या के द्वारा निर्मित हुआ है। अविद्या की यह रचना भी सत्यस्वरूप, नित्य, सर्वव्यापक, माया के दोषों से रहित निर्विकार तथा निर्गुण एवं कूटस्थ आत्मा पर कल्पित यानि आरोपित है, उदाहरण के लिए जैसे मूवी का संसार प्रकाशकिरणों पर आरोपित होता है अथवा जैसे अन्धकार में रज्जु पर सर्प तथा सर्प से सम्बन्धित भयादि भाव आरोपित हो जाते हैं। आत्मतत्वदर्शियों ने भी इस संसार को उसी रूप में अनुभव किया है जैसे स्वप्न का संसार जागने पर असत्य लगता है अथवा जैसे मायानिर्मित मायानगर। स्वप्न–संसार के पदार्थों तथा जागृत संसार के पदार्थों को तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाये तो तात्विक दृष्टि से समान प्रतीत होते हैं, जैसे कि उनकी ग्राहकता तथा ग्राह्यता समान है, अपने–अपने काल में दोनों सत्य भासित होते हैं तथा एक–दूसरे के काल में असत्य भासित होते हैं। पदार्थों की प्रयोजनता भी समान है यानि जागृत में भूख तथा प्यास से तृप्त प्राणी स्वप्न में विपरीत अनुभव कर सकता है, इसी प्रकार स्वप्न में दावत से तृप्त प्राणी जागृत में विपरीत अनुभव कर सकता है। अन्तर माया का है कि स्वप्न में चित्त पर तमोगुणी निद्रा का आवरण है तो जागृत में अविद्या का आवरण है। अतः मन ही त्रिगुणात्मक माया के द्वारा स्वप्न के

संसार का निर्माण करता है तथा हमारा चित्त ही अज्ञानरूपी माया के द्वारा जागृत के संसार का निर्माण करता है। सुषुप्ति में अथवा अचेतन स्थिति (Coma) में जब चित्त प्राण में लीन रहता है तब दोनों संसार भी असत्य हो जाते हैं। दोनों संसारों के सभी पदार्थ स्थूलरूप में भी विद्यमान रहते हैं तथा सूक्ष्मरूप में भी। यह भी अनुभव किया गया है कि स्थूलरूप सूक्ष्मरूप में तथा सूक्ष्मरूप स्थूलरूप में परिवर्तित होते हैं। योगसाधना के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की गयी है। महर्षि पतंजलि ने इस रहस्य की पुष्टि की है कि –

ते व्यक्तसूक्ष्माः गुणात्मनः।
परिणामैकत्वात् वस्तुतत्वम्।।
अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्ति अध्वभेदात् धर्माणाम्।
जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात्।।

संसार का जो पदार्थ नाम तथा रूप से व्यक्त किया जाता है उसे स्थूलपदार्थ कहा जाता है तथा जो पदार्थ केवल नाम (शब्द) से व्यक्त किया जाता है उसे सूक्ष्मपदार्थ कहा जाता है। यह दोनों प्रकार के पदार्थों से संसार व्यक्त होता है तथा दोनों प्रकार के पदार्थ परमात्मा की मायाशक्ति के तीन गुणों के क्रमपरिणाम से सृजित होते हैं किन्तु यह परिणाम कारण तथा कार्य के युग्मों की अनन्त श्रृंखला के रूप में हमारे चित्त द्वारा अनुभूत होते हैं। प्रत्येक कार्य किसी अन्य कार्य का कारण होता है तथा प्रत्येक कारण किसी अन्य कारण का कार्य होता है किन्तु इन समस्त कारणों का मूलकारण त्रिगुणात्मक मायाशक्ति है। सिद्धपुरुषों ने समाधि में इसका अनुभव किया है, इसका वेदप्रमाण है कि –

ते ध्यानयोगानुगताः अपश्यन्।
देवात्मशक्तिं स्वगुणैः निगूढाम्।।
सा कारणानि निखिलानि तानि।
कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एका।।
यावत् हेतुफलावेशः तावत् हेतुफलोद्भवः।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारः न समुपद्यते।।

अर्थात् समाधिस्थ सिद्धपुरुषों ने जब सृष्टि की रचना का संकल्प किया तब उन्होंने अपने गुणों से आच्छादित परमात्मा की मायाशक्ति का साक्षात्कार किया जो सृष्टि के अनन्त कारणों की मूलकारण तथा कालातीत परमात्मस्वरूप में विद्यमान थी। वस्तुतः जब तक चित्त में वस्तुओं के कारण–कार्य का आग्रह यानि भावना प्रकाशित होती रहती है तब तक संसार का प्रपंच विद्यमान रहता है, जैसे ही इस भावना का नितान्त अभाव होता है, संसार का भी अभाव हो जाता है। यही कारण है कि किसी भी पदार्थ का अस्तित्व उसके गुणपरिणाम पर निर्भर करता है। इसीलिए प्रत्येक पदार्थ का वर्तमान के साथ–साथ उसका अतीत तथा भविष्य भी सदैव

विद्यमान रहता है, कभी स्थूल में तो कभी सूक्ष्म में। केवल काल का भेद रहता है और योगीजन कालविशेष में जाकर उसका अनुभव कर सकते हैं। अतः पदार्थ का कोई भी नाम–रूप प्रकृति के तत्वों से तुरन्त निर्मित किया जा सकता है जिसके परिणामस्वरूप योगी किसी भी नाम–रूप में संकल्पमात्र से परिवर्तित हो सकते हैं अथवा किसी भी पदार्थ में परिवर्तन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए भगवान श्रीकृष्ण का वृन्दावन में नये गोप–गोपिकाओं तथा अन्य जीवों का माया से निर्माण कर ब्रह्मा जी का अहंकार का नाश अथवा द्वारिका नगर का निर्माण। महावतार बाबा जी का श्यामाचरण लहरी के लिए पहाड़ पर हीरे तथा स्वर्ण से निर्मित महल का निर्माण।

संसार में कोई भी पदार्थ न तो उत्पन्न होता है और न नाश को प्राप्त होते हैं अपितु रूप परिवर्तन होता है। जैसे रूई से रूई का धागा, धागे से रूई का कपड़ा, कपड़े से शर्ट। इस प्रक्रिया में आधारभूत कारण जो कार्य के रूप में परिवर्तित होता है, उसे 'अपादान कारण' कहते हैं तथा रूप परिवर्तन के कर्ता को 'निमित्त कारण' कहते हैं। रूप परिवर्तन की इस प्रक्रिया में दो पात्र हैं एक तो माया की उत्पत्ति 'जड़ प्रकृति' जिसे गीता में 'क्षेत्र' कहा गया है और दूसरा मायाधीश परमात्मा जिसे गीता में 'क्षेत्रज्ञ' कहा गया है। भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

**यावत् संजायते किंचित् सत्त्वं स्थावरजंगमम्।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात तद्विद्धि भरतर्षभ।।**

अर्थात् संसार का प्रत्येक जड़ अथवा चेतन पदार्थ सभी क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ के संयोग से प्रकट हुआ है।

यहाँ यह दोनों पात्र अनादि तथा अनन्त हैं, अतः प्रकृति की उपज बुद्धि तत्व के कार्यक्षेत्र से बाहर हैं और तर्क से नहीं जाने जा सकते। वेदशास्त्र में सांकेतिक भाषा में आस्था के लिए लक्षण दिया है कि –

**तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात् पावकात् विस्फुल्लिंगाः।**
**सहस्त्रशः प्रभवन्ते सरूपाः तथाक्षरात् विविधाः सोम्य भावाः।।**
**प्राणादिभिः अनन्तैश्च भावैः एतैः विनिर्मिता।**
**माया ह्येषा तस्य देवस्य यया सम्मोहितः स्वयम्।।**
**यथोर्णनाभिः सृजते ग्रह्यते च।**
**यथा प्रथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।।**
**यथा सतः पुरुषात् केशलोमानि।**
**तथाक्षरात् सम्भवति इह विश्वम्।।**
**एतस्मात् जायते प्राणः मनः सर्वेन्द्रियाणि च।**
**खं वायुः ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।**
**एकमेव अद्वितीयं ब्रह्मासीत्।**

तस्मात् अव्यक्तमेवाक्षरः।।

तस्मात् अक्षरात् महत् महतो वै अहंकारः।

तस्मादेव अहंकारात् पंचतन्मात्राणि तेभ्यः भूतादीनिति।।

अर्थात् यही सत्य है कि जिस प्रकार पूर्णवेग से उद्दीप्त अग्नि से हजारों ज्वालायें अग्नि के ताप तथा रूप को ग्रहण कर प्रस्फुटित होती हैं उसी प्रकार अक्षर ब्रह्म से माया के अनन्त भाव प्रकट होते हैं। प्रथम ब्रह्मतेज से युक्त अनन्त प्राण, उनसे मन, बुद्धि, समस्त इन्द्रियादि सूक्ष्म भाव तथा कर्ता के रूप में निमित्त कारणब्रह्म, उस कारणब्रह्म से अहंकार, अहंकार से पंचमहाभूत तन्मात्रायें तदन्तर स्थूल जगत के रूप में आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी आदि पंचभूत और उनसे समस्त सूक्ष्म तथा स्थूल जगत। माया के इन अनन्त भावों से संसार का निर्माण हुआ है, अपनी स्वरूपशक्ति दृश्यमयी प्रकृति की भ्रान्तिरूपी अविद्या के द्वारा परमात्मा ने ही अज्ञानी जीवात्मा का रूप धारण किया है, वेदप्रमाण है कि –

कल्पयति आत्मनात्मानं आत्मादेवः स्वमायया।

सः एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तनिश्चयः।।

अर्थात् वेदशास्त्र का कथन है कि परमात्मा ने ही अपनी माया के द्वारा अपने को अज्ञानी तथा भोक्ता के रूप में शरीरधारी जीवात्मा के रूप में प्रकट किया है, किन्तु स्वयं कूटस्थ तथा सर्वसाक्षी के रूप में सर्वनियन्ता तथा सर्वज्ञ आत्मा का भी कला प्रदर्शन किया है। इस सत्य की भी वेद पुष्टि करते हैं कि –

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया।
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।।
तयोऽन्यः पिप्पलं स्यादवत्ति।
अनश्ननन्यो अभिचाकशीति।।

*(मुण्डक उप. 3/1/1)*

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः।
अनीशया शोचति मुह्यमानः।।
जुष्टं यदा पश्यति अन्यमीशम्।
अस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

*(मुण्डक 3/1/2)*

आरम्य कर्माणि गुणान्वितानि।

भावांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः।
कर्मक्षये याति सः तत्वतोऽन्यः।।

(श्वेता. उप. 6/4)

अर्थात् एक ही मायारूपी वृक्ष पर दो जुड़वाँ (साथ–साथ रहने वाले) पक्षी (एक नियम्य भाव वाला जीव तथा दूसरा नियामकभाव वाला परमात्मा) आश्रय करके रहते हैं। उनमें जीव मायिक स्वादिष्ट फलों का स्वाद लेने में व्यस्त है और दूसरा ईश्वर स्वाद न लेते हुए केवल साक्षित्व करता है। स्वाद में निमग्न जीव अल्पज्ञता तथा असमर्थता से दुःखी है। जब कभी योगसिद्धि से प्राप्त दिव्यदृष्टि से अपने साथी ईश्वर तथा उसकी महिमा को देखता है, तब भ्रान्ति के अज्ञान से मुक्त होकर ईश्वर के स्वरूप में आ जाता है। इसीलिए जब जीव सतोगुणी कर्मसाधना के द्वारा चित्त के सभी मायिक भावों को ईश्वर को समर्पित कर अपने कर्माशय का नाश कर विशुद्धचित्त वाला हो जाता है तब वह कर्मबन्धन से मुक्त होकर मायातीत परमात्मा का स्वरूप प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः संसार की उत्पत्ति माया की भ्रान्तिमात्र है, क्योंकि कोई भी पदार्थ उत्पन्न नहीं होता, अपितु दूसरे रूप में प्रकट होता है, जैसे मिट्टी से घट तथा घटाकाश, स्वर्ण से अनेक आभूषण, पृथ्वी से पेड़–पौधे तथा फल और कीड़े–मकोड़े। पुरुषों के चेतन शरीर से अचेतन बाल। इसी प्रकार गुणों से तथा गुणविकारों से यह जड़ तथा चेतन संसार प्रकट हुआ है। समस्या यह है कि हमारी बुद्धि भी गुणों से प्रकट हुई है, अतः गुणों की इस प्रक्रिया को समझने में असमर्थ है। इस गुणात्मक प्रकृति के विषय में भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट कथन है कि –

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते,
नान्तो न चादि न च संप्रतिष्ठा।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलं,
असंगशस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा।।

अर्थात् इस मायारूपी वृक्ष के स्वरूप को कोई नहीं जान सकता, क्योंकि इसका न तो आदि है और न अन्त है। इसका कोई आधार भी नहीं है। इसका मूल भी अवयव तथा अनन्तस्वरूप परमात्मा में गुप्त है। अतः त्रिगुणात्मक माया पर केवल मायाध्यक्ष परमात्मा की कृपा से ही विजय सम्भव है, अन्यथा कोई उपाय नहीं है।

द्वैतसंसार का आधार मायानिर्मित चित्त है। इसी मायामय चित्त से संसार का स्फुरण होता है। इस गुप्त रहस्य का उद्बोधन वेदवाणी में दिया है कि –

मनोदृष्टमिदं विश्वं यत्किंचित् सचराचरम्।
मनसो हि अमनीभावे द्वैतभावं न समुपद्यते।।

यथा स्वप्ने द्वयाभासं चित्तं चलति मायया।
तथा जागृद्द्वयाभासं चित्त चलति मायया।।
चित्तकालाः हि ये अन्तस्तु द्विकालाश्च ये बहिः।
कल्पिताः एव ते सर्वे विशेषो नान्यहेतुकः।।
आद्यन्ते यन्नास्ति वर्तमाने अपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तः अवितथाः इव लक्षिताः।।
वीतरागभयक्रोधैः मुनिभिः वेदपारगैः।
निर्विकल्पो हि अयं दृष्टः प्रपंचोपशमः अद्वयः।।
एतद् ज्ञेयं नित्यंमात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मैव एतत्।।
आत्मा हि आकाशवत् जीवैः घटाकाशैरिवोदितः।
घटादिवच्च संघातैः जातौ एतन्निदर्शनम्।।

अर्थात् यह जो चेतन तथा अचेतन दृश्यजगत हमारे अनुभव में आता है, वह चाहे स्वप्नसंसार हो अथवा जागृतसंसार हो, वह सब हमारे चित्त की उपज है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह कि चित्त की अनुपस्थिति में विद्यमान नहीं रहता, जैसे सुषुप्ति में तथा अचेतन अवस्था में। आप कहेंगे कि जागने पर तो पुनः विद्यमान हो जाता है। इसका समाधान महर्षि पतंजलि ने किया है कि –

न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तद् अप्रमाणकं किं स्यात्।
कृतार्थं प्रति नष्टमपि अनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्।।

अर्थात् यह दृश्यजगत किसी एक चित्त (जीव) के आधीन नहीं है, क्योंकि उसकी अनुपस्थिति में दूसरे चित्तों का विषय रहता है। इसीलिए ब्रह्मज्ञानियों की दृष्टि में नष्टप्राय (कल्पित) हो जाने पर भी अन्य अज्ञानियों की दृष्टि में विद्यमान रहता है। इसीलिए निर्बीज समाधि जब योगी स्वरूपावस्था में रहता है तब चित्त केवल आत्मतत्व से प्रकाशित रहता है और द्वैतसृष्टि का अभाव हो जाता है। ऐसे योगी की दृष्टि दिव्यदृष्टि हो जाती है जिसमें –

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः।।

अर्थात् सिद्धयोगी समस्त प्राणियों में अपने को व्याप्त देखता है तथा समस्त प्राणियों को अपने आत्मस्वरूप में देखता है।

अज्ञानियों का संसार मृगतृष्णा की भांति भ्रान्ति (माया) से विद्यमान रहता है, ठीक वैसा ही जैसा माया के द्वारा हमारा चित्त ही स्वप्न के संसार का निर्माण कर देता है जोकि स्वप्नकाल में सत्य भासित होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि हमारा जागृत संसार द्विकालिक है अर्थात्

जैसा स्वप्नकाल के पूर्व था, वैसा ही स्वप्न काल के बाद भी रहता है। तुर्यावस्था में तीनों कालों में असत्य हो जाता है। इसका मुख्य कारण है कि जिस वस्तु का आदि (प्रतीति से पूर्व) असत्य है तथा अन्त (प्रतीति के बाद) भी असत्य है, वह वस्तु वर्तमान काल में असत्य होती है। उदाहरण के लिए रज्जु में सर्पभ्रान्ति से पूर्व सर्प विद्यमान नहीं था तथा प्रकाश से सर्पभ्रान्ति के अन्त में भी सर्प विद्यमान नहीं है तब भ्रान्तिकाल में भी सर्प विद्यमान नहीं है। अतः वर्तमान में संसार सत्य प्रतीत होते हुए भी यथार्थतः असत्य ही है। मायिक पंचक्लेशादि से मुक्त मायातीत महापुरुषों ने इस सत्य का अनुभव किया है। जैसे पंचभूतों से निर्मित घटों में अनेक घटाकाश उदित हो जाते हैं किन्तु समस्त घटाकाश महाकाश से कभी पृथक नहीं होते, वैसे ही पंचभूतों से निर्मित शरीरों में जीवात्मायें परमात्मा से कभी पृथक नहीं होती। अतः यही परम सत्य है कि यह भोग्य पदार्थों के रूप में दृश्यजगत, भोक्ता के रूप में जीव, यह सभी परमात्मा से कभी पृथक नहीं है, अपितु उसी में निवास करते हैं। यथार्थ में भोक्ता, भोग्य तथा सर्वनियन्ता परमात्मा यह तीनों ही विशुद्ध ब्रह्म का ही स्वरूप हैं, प्रतीत होने वाला भेद मायाजनित है, अतः मिथ्या है। उपनिषद् में इस परम सत्य को इस प्रकार वर्णन किया है कि –

**यदेतद् दृश्यते मूर्त एतद् ज्ञानात्मनः तव।**
**भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिनः।।**
**ये तु ब्रह्मविदः विशुद्धचेतसः ते अखिलं जगत्।**
**ज्ञानात्मकं पश्यन्ति त्वत्रूपं परमेश्वर।।**

*(श्वेता. उप. 3/2)*

अर्थात् यह जो मूर्तरूप में संसार दिखाई दे रहा है, यह वास्तव में मूलकारण विज्ञानस्वरूप ईश्वर का ही गुप्त वेश में मायामय स्वरूप है जोकि अयोगियों को भ्रान्तिज्ञान के कारण संसार रूप में दिखाई दे रहा है किन्तु आत्मज्ञ योगियों को यही सर्वव्याप्त ईश्वर रूप में दिखाई देता हैं। तत्वज्ञान के अभाव में संसार के मिथ्यात्व को समझना असम्भव है, ठीक वैसे ही जैसे एक नासमझ अबोध बालक के लिए यह समझना कठिन है कि सिनेमा के पर्दे पर दीखने वाला संसार मिथ्या है, पर्दे पर विस्फोट की घटना आदि सभी प्रकाशकिरणों पर आरोपित जड़ (अचेतन) फिल्म का सूक्ष्म से स्थूलरूपान्तर मात्र है। भगवान श्रीकृष्ण ने इसी का संकेत किया है कि –

**यदा भूतप्रथक्भावं एकस्थमनुपश्यति।**
**ततः एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।।**
**क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवं अन्तरं ज्ञानचक्षुषा।**
**भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुः यान्ति ते परम्।।**

अर्थात् जब योगी अज्ञान से आरोपित जीवों के पृथक–पृथक स्वरूप को ज्ञानदृष्टि से

परमात्मा के सर्वव्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप में आरोपित मात्र अनुभव करता है तथा समाहित चित्त से परमात्मा के इस मायावी विस्तार का संसार के रूप में साक्षात्कार करता है, तब उसे इस सत्य का ज्ञान हो जाता है, क्योंकि –

**प्रकृतिं तु मायां विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।**
**एतस्यैव अवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्।।**

**तदा सत्त्वपुरुषयोः अन्यताख्यातिमात्रेण।**
**सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञतृत्वं च।।**
**प्रभवः सर्वभावानां सतामितिविनिश्चयः।**
**सर्वं जनयति प्राणः चेतोंशून् पुरुषः पृथक्।।**

अर्थात् परमात्मस्वरूप से प्रकट हुई अपरा प्रकृति तथा परा प्रकृति दोनों माया कही जाती हैं तथा परमात्मा ही इस माया का मायाधीश मायावी है। यह समस्त संसार इसी माया से सृजित अनन्त अवयव यानि जड़ तथा चेतन पदार्थों से चित्त के दृश्य के रूप में व्याप्त है। जब सिद्धयोगी को मायाकृत चित्त तथा आत्मतत्व के भेद का ज्ञान हो जाता है तब उसका माया के अनन्त भावों पर पूर्ण अधिपत्य हो जाता है और वह सर्वज्ञता को प्राप्त कर लेता है।

अतः संसार का सत्य यही है कि –

**तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये, यतः प्रवृत्ति प्रसृता पुराणी।।**

*(गीता)*

**यस्मात् जातं जगत्सर्वं यस्मिन्नेव प्रलीयते।**
**येनेदं धार्यते चैव तस्मैः ज्ञानात्मने नमः।।**

अर्थात् जिस परमात्मस्वरूप से संसार प्रकट हुआ, हमें उसी का आश्रय लेना चाहिए। यह संसार उसी से प्रगट होता है, उसी में लीन होता है और उसी के सर्वव्यापक स्वरूप में स्थित है, अतः हम उसी की शरणागति में उसी का नमन करते हैं। हम सबकी एक अनुभूति है कि स्वप्न का संसार हमारा चित्त ही बनाता है, क्योंकि अन्य कोई कर्ता वहाँ नहीं है और बिना कर्ता के कोई कार्य सम्भव नहीं। यहाँ पर यह मानना ही पड़ेगा कि मायाशक्ति अवश्य विद्यमान है, क्योंकि चित्त भी माया की रचना है, संसार दृष्टा तथा दृश्य का संयोग मात्र है, दृष्टा में अहंभाव माया की रचना है, दृश्यों का प्रादुर्भाव माया के गुणों का क्रमपरिणाम है, स्वप्न के संसार की अनुभूति भी इसी प्रकार माया के आवरण में चित्त का स्फुरणमात्र है। अतः तमोगुण से उत्पन्न निद्रावरण में स्वप्न के संसार की सत्यता भी माया के प्रभाव का परिणाम है। चित्त से जागृत संसार की असत्यता भी माया के प्रभाव का परिणाम है। यह एक महान आश्चर्य है कि संसार की प्रत्येक वस्तु उत्पन्न नहीं होती अपितु कारण का कार्य में रूपान्तर है, जैसे रूई से रूई का धागा, धागे से

कपड़ा, कपड़े से रूई की शर्ट। इस कारण–कार्य की श्रृंखला का आरम्भ भी माया के तीन गुणों के क्रमपरिणामों से होता है, इसीलिए शास्त्र का कथन है कि –

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।**
**अहंकारविमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।**
**तत्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।**
**गुणाः गुणेषु वर्तन्ते इति मत्वा न सज्जते।।**
**नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा दृष्टानुपश्यति।**
**गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति।।**
**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।**
**हेतुनानेन कौन्तेय जगत् विपरिवर्तते।।**

*(गीता)*

अर्थात् यह संसार कार्यरूप है, कार्य कर्म का फल है, कर्म प्रकृति यानि परमात्मा की माया के गुणों द्वारा किये जाते हैं। इसीलिए संसार का प्रत्येक पदार्थ गुणपरिणाममात्र है। वेदवाणी में यह सत्य माया की शक्ति का प्रदर्शन मात्र है कि –

**शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेपावृतिरूपकम्,**
**विक्षेपशक्तिः लिंगादिं ब्रह्माण्डानं जगत्सृजत्,**
**आवरणात्यपरां शक्तिः या संसारस्य कारणम्।।**

अर्थात् माया की गुणात्मक विक्षेपशक्ति जगत की रचना करती है तथा माया की दूसरी आवरण शक्ति भ्रान्तिज्ञान के द्वारा इस मायामय जगत को चित्तदृश्य के रूप में दिखाती है। इसी अविद्या के प्रभाव से यह मायाकृत संसार सत्य भासित हो रहा है। आत्मज्ञानी महापुरुष गुणों की इस लीला को तथा गुणविकारों से सृजित इस मायामय संसार के रहस्यों को जानकर इस मायापाश से मुक्त होकर स्वतन्त्र विचरण करते हैं, क्योंकि –

**इच्छारूपो हि योगीन्द्रः स्वतन्त्रः अजरः अमरः।**
**क्रीड़ति त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित्।।**
**अचिन्त्यशक्तिमान् योगी नानारूपाणि धारयेत्।**
**संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रियः।।**

अर्थात् आत्मज्ञानी योगी का माया के अनन्त भावों पर अधिपत्य हो जाने पर वह इच्छारूप हो जाता है यानि उसके संकल्पमात्र से मायिक रचना हो जाती है, वह अजर, अमर तथा स्वतन्त्र हो जाता है कि तीनों लोकों में उसकी गति होती है, इच्छामात्र से अनेक शरीर धारण कर उनका संहार कर सकता है। तात्पर्य यह कि माया की नामरूप की रचना भी चित्त का संकल्पमात्र है। अतः गुणातीत होने पर ईश्वर का ऐश्वर्य स्वतः प्राप्त हो जाता है और यह संसार

उसी ऐश्वर्य की उपज है। यही संसार का सत्य है कि –

**यथा मायामयात् बीजात् जायते तन्मयोऽकुंरः।**
**नासौ नित्यो न चोच्छेदो तद्वत् धर्मेषु योजना।।**

अर्थात् जिस प्रकार मायावी के मायामय बीज से मायामय अंकुर उत्पन्न होता हुआ दिखाई देता है, वह न तो नित्य है और न नाशवान, क्योंकि वह उत्पन्न ही नहीं हुआ, है प्रतीतिमात्र है। उसी प्रकार मायारूपिणी अविद्या से संसार उत्पन्न होता दीखता है, परमार्थतः नहीं। भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार पुरुष तथा प्रकृति अनादि हैं और अनादि का जन्म सम्भव नहीं। यह संसार पुरुष तथा प्रकृति का संयोगमात्र है और इस संयोगरूपी कार्य का कारण अविद्या है, क्योंकि महर्षि पतंजलि के अनुसार –

**''तस्य हेतुः अविद्या''**

अर्थात् पुरुष, प्रकृति के संयोग की कारण अविद्या है। यह अविद्या ही ज्ञान, अज्ञान तथा अज्ञानजनित द्वैतसंसार की कारणभूता है तथा परमात्मा के अनादिस्वरूप से प्रकट हुई है, अतः अनादि है। वेदों ने इस सत्य की पुष्टि की है कि –

**लोकानां व्यवहार्थमविद्या इयं विनिर्मिता।**
**एषा विमोहनी इत्युक्ता द्वैताद्वैतस्वरूपिणी।।**

अर्थात् लोकलीला की इच्छा से परमात्मा ने अविद्या को प्रकट किया है जिसके विद्या (ज्ञान) तथा अविद्या (अज्ञान) दोनों ही गुण हैं। अविद्यास्वरूप से भ्रान्तिज्ञान के द्वारा कल्पित एवं आरोपित संसार को सत्यभासित करती है तथा विद्यास्वरूप से संसार के आधारभूत सर्वव्यापी चैतन्यात्मा परमात्मा का विशुद्ध चित्त में साक्षात्कार भी कराती है। भारतीय संस्कृति में मायाशक्ति को जगदम्बा देवी का नाम तथा रूप दिया है। अष्टभुजा दुर्गाशक्ति अपने अनेक नामरूपों में अविद्याशक्ति के प्रतीक के रूप में संसार की रचना, पालन तथा संहार के द्वारा समस्त लोकों पर शासन करती है तथा सूक्ष्म रूपा गायत्री देवी के रूप में विशुद्ध अन्तःकरण में विद्या का संचार कर परमात्मदर्शन का मार्ग प्रशस्त करती है। प्रकृति तथा पुरुष का यह संयोग ही संसार की स्थूलसृष्टि तथा सूक्ष्मसृष्टि का दोनों अपादान तथा निमित्त कारण है। यही परम सत्य वेदवाणी में प्रकट किया है कि –

**सर्वगे तु निराधारे चैतन्यात्मनि संस्थिता।**
**अविद्या द्विगुणां सृष्टिं करोति आत्मावलम्बनात्।।**

अर्थात् यह अविद्याशक्ति जोकि सर्वव्यापी, सर्वाधार तथा सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा में सदैव निवास करती है, वही इस स्थूलसृष्टि तथा सूक्ष्मसृष्टि का आत्मतत्व में विकल्पना के रूप में निर्माण करती है। यही संसार का सत्य है, यही मायावी की माया का रहस्य।

# योग-आसन

## जानुशिरासन

यह आसन महामुद्रा की प्रतिकृति है। महामुद्रा में ठोड़ी छाती से लगा कर जालन्धर बन्ध साथ में लगाया जाता है, और साथ में प्राणायाम की भी विधि महामुद्रा के साथ-साथ है, महामुद्रा बहुत ही लाभकारी मुद्रा है, किन्तु क्योंकि उसका वर्णन सभी योगाचार्यो ने मुद्राओं में किया है। अतः उसका वर्णन पूर्ण विधि से मुद्राओं में ही किया जायेगा।

**विधि**– सम सूत्रता से बैठ जाइये। सीधे बैठकर अपने एक पैर को अपनी जंघा के साथ सटा कर उसकी एड़ी योनिस्थान लिंग नाल के नीचे लगाये रखिये, दूसरे पैर को सामने की ओर लम्बा फैलाकर उस पैर का अँगूठा या सम्भव हो सके तो पूरा पंजा ही पकड़ लीजिये, फैला हुआ पैर जमीन के साथ बिल्कुल सटा रहे, इसके बाद पैर के पंजे को ऊपर की ओर तनाव के साथ खींचते हुए अपना मस्तक घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार इस पैर को बदल कर पहले पैर की तरह जंघा पर जमाकर व दूसरे पैर को फैलाकर उसके भी अँगूठे या पंजे को पकड़ कर तनाव के साथ ऊपर की ओर खींचते हुए अपने मस्तक को घुटने पर लगा दें, इसी का नाम **जानुशिरासन** है, दोनों पैरों को बदल-बदल कर करना चाहिए, जितना पहले पैर से किया हो उतना ही दूसरे पैर से भी जरूर करें तभी आसन पूर्ण होगा।

**करने का समय**– इस आसन के करने में हर व्यक्ति को पहले-पहले कुछ कठिनता होती है। किन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे अवश्य ही बन जायेगा। प्रथमाभ्यास में इस आसन को 15 या 20 सैकेन्ड से शुरू करें व प्रतिदिन 4 या 5 सैकन्ड बढ़ाते हुए 2 मिनट तक बढ़ा लें तो उत्तम रहेगा। शरीर के बलाबल को देखकर शनैः शनैः और भी अधिक बढ़ाया जा सकता है।

**लाभ**– शरीर में दृढ़ता देता है। वात रोग नाशक है, यकृत एवं प्लीहा की बीमारियों को पूरा-पूरा लाभ पहुँचाता है। आँतों को सबल बनाता है। कोष्ठबद्धता दूर होकर जठराग्नि बढ़ती है, भूख खूब लगती है। यकृत पर पूरा-पूरा प्रभाव पड़ने पर रक्त शुद्ध होता है। श्वास में लाभप्रद है। वीर्य रक्षा के लिए श्रेयस्कर एवं स्तम्भक है।

जानुशिरासन

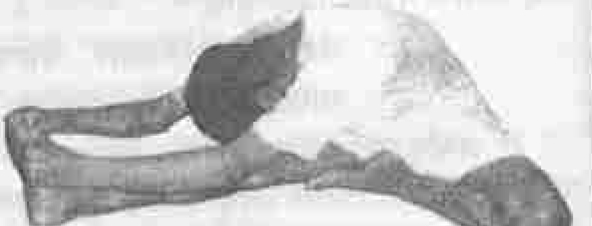

# यों काटा क्लिष्ट कर्म

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, 1, प्रोफेसर कालोनी, गोरखपुर

मैं जुलाई 1956 में प्रथम बार श्री गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी की शरण में श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम आया था। यों तो मई 1956 में श्री चरण फीरोजाबाद पधारे थे और अपने कर कमलों से नेती और जीवन तत्व साधन कराया था। तब से निरंतर उन करुणानिधान श्री प्रभूजी और गुरुदेव का सानिध्य बना रहा और कृपायें होती रहीं। उन्हीं में से एक कृपा का वर्णन करने का सौभाग्य प्राप्त कर रहा हूँ।

मेरी हल्द्वानी डिग्री कालेज में स्थाई नियुक्ति 1972 में हुई थी परन्तु उसी दिन से मुसीबत का एक पुछला भी लग गया था कि विशेषज्ञ मेरी नियुक्ति कर गये थे और प्रबन्ध समिति अपने प्रत्याशी की नियुक्ति नहीं करा सकी थी। अतः तभी से परेशानियाँ पैदा करना शुरू कर दिया था। प्रबन्ध समिति ने दो बार सेवा समाप्ति की और एक बार निलम्बन– सभी कुछ विश्वविद्यालय स्तर पर अवैध ठहराया गया।

अंत में प्रबन्ध समिति ने योजनाबद्ध तरीके से निलम्बन कर आरोप पत्र थमा दिया और डिसमिसल की तैयारी शुरू कर दी। कुलपति कुमायूँ विश्वविद्यालय नैनीताल को समझाया गया कि कालेज मैनेजमेंट बनाता है और इस एक व्यक्ति (मेरी) की वजह से कालेज अव्यवस्थित (1972 से 1980 तक) हो रहा है। कुलपति ने भी मेरे समक्ष आफर रखा कि पांच माह का वेतन और अच्छा सा प्रमाण पत्र लेकर नौकरी छोड़ दूँ अन्यथा वे मेरी सेवा समाप्ति का, प्रबन्ध समिति, का अनुमोदन कर देंगे। श्री गुरुचरणों में मेरठ में उपस्थित होकर सारी कठिनाइयाँ निवेदन कर दी गई। उत्तर मिला– " लल्ला अबकी सारा कर्ज चुका दें "

इधर पूज्य गुरुदेव के शिष्य सिद्धयोगी पूज्य " टाट बाबा " से मिलकर कर्ज चुकाने की समयावधि ज्ञात की जो 24 माह बताई गई। अंत में 20वें माह में कुलपति के यहाँ अंतिम सुनवाई हुई। मैं तत्काल सवाई आश्रम आया क्यों कि पूज्य गुरुदेव ऋषिकेश जाने वाले थे। मैंने चरणों में निवेदन किया तो बताया गया कि अभी कार्य होने में समय शेष है।

तब मैंने उन कृपा सागर से यों निवेदन किया। करुणा सागर ने मुझे विस्तार से स्थिति बताने और तदानुकूल ( उन सर्वज्ञ को ) उपाय सुझाने की अनुमति प्रदान की। मैंने इस प्रकार निवेदन किया कि मानें मैं सीढ़ियां उतर रहा हूँ। क्षणभर को बुरा समय आता है, मैं गिर पड़ता हूँ, पैर की हड्डी टूट जाती है। तत्काल अच्छा समय होने के कारण अच्छा डाक्टर और उपचार मिलता है, प्लास्टर चढ़ जाता है। सब कुछ ठीक होने तक के बाद भी प्लास्टर के कारण दो तीन माह बरसात में दर्द तो झेलना ही होगा। सो हे करुण सागर आपको उस एक क्षण से मेरी रक्षा करनी है जब मेरा पैर सीढ़ी से फिसल कर मैं गिर रहा हूँ।

अर्थात् यदि इस समय कुलपति का निर्णय मुझ निर्दोष के अनुकूल हो जावेगा तो आगे के उलझाव समाप्त हो जावेंगे। पूज्यपाद कृपा सागर अपने कक्ष के आगे आराम कुर्सी पर सिर के पीछे अपने दोनों हाथ लगाकर अचिंतित मुद्रा में सब कुछ सुनते रहे और मैं प्राध्यापक होने के नाते अपने स्वभावानुसार उन्हें सब कुछ समझाता रहा। और कृपा सागर विद्यार्थी की भांति मौन साधकर मेरी व्यथा कथा सुनते रहे।

मुझ में अधीरता का दुर्गुण है सो मैंने कथा सुनाकर फीरोजाबाद ( अपने घर ) जाने की अनुमति हेतु श्री चरणों में सिर रखा। अनोंखी समस्या के अनोंखे समाधान। श्री गुरुदेव ने मेरे सिर पर कसकर हाथ रखकर गर्दन दबाई और पीठ में कसकस कर 5–7 थप्पड़ मारे, और रजप्रसाद देकर आदेश दिया कि मैं अगले दिन निश्चिंत रूप से हल्द्वानी चला जाऊँ। हल्द्वानी स्टेशन पर पहुँचते ही अखबार में पढ़ा कि राज्यपाल ( कुलाधिपति ) ने कुछ अन्य प्रकरणों पर संज्ञान लेते हुए कुलपति को दो दिन के अन्दर त्यागपत्र देने की सलाह दे दी है अन्यथा बरखास्त करने की धमकी।

मैंने घर पहुँच कर श्री प्रभूजी और गुरुदेव की आरती की और तत्काल नैनीताल पहुँच कर कुलपति कुमायूँ वि. वि. को एक संक्षिप्त पत्र लिखा और अंत में प्रार्थना की कि आप मुझे न्याय दें, प्रभू आपकी रक्षा करेंगे। पत्र उन तक पी.ए. के माध्यम से पहुँचाया। तत्काल रजिस्ट्रार बुलाये गये–उन्हें मेरा पत्र दिखाया गया। कुलसचिव ( रजिस्ट्रार ) को संदेह था कि मैंने कुलपति को भला–बुरा लिखा होगा अतः वे मुझे क्रोध से देखते हुए कुलपति के पास गये। कुलपति ने वैधानिक स्थिति पूछते हुए कुलसचिव को मेरी सेवा समाप्ति ( डिसमिसल ) के प्रबन्ध समिति के प्रस्ताव को अस्वीकृति आदेश बनाने को कहा। कुलसचिव मेरी ओर प्रसन्नता का संकेत देते हुए निकल गये।

अगले दिन जब कुलपति श्री सिम्हल नैनीताल राजभवन पहुँचे तो राज्यपाल ने कहा कि कुलपति त्याग पत्र देकर उच्चशिक्षा आयोग के अध्यक्ष पद हेतु आवेदन दें जो तीन वर्ष हेतु होगा। इस प्रकार मुझे न्याय मिला और कुलपति को पुरस्कार। यहाँ यह बताना भी समीचीन होगा कि प्रबन्ध समिति ने कुलपति आदेश के विरुद्ध कुलाधिपति ( चांसलर ) के यहाँ अपील कर दी जिसका निस्तारण 4 माह बाद मेरे पक्ष में हुआ। यानी योगिराज टाट बाबा के बताये 24 माह पूर्ण हुए।

पूज्य गुरुदेव रजप्रसाद, पुष्पप्रसाद तो देते थे परन्तु इस प्रकार का उपचार मैंने कभी नहीं देखा था। ऐसी अनेकानेक कृपायें मिलती रही। मैं सौभाग्य शाली रहा।

# बिन पतवार के.......

– जगदीश राए बंसल 'अधम', नई दिल्ली

मेरे गुरु वर हैं, सब के सहारे।
बिन पतवार के, खेवन हारे।।

गुरु वर हमारे – हम हैं तुम्हारे
कोई यह समझे – ना समझे प्यारे
सदा रहते हैं – साथ हमारे ।

बिन पतवार..........(1)

तुने लाखों के कष्ट हैं मिटाए
कितनों के प्राण हैं तुने बचाए
आप सब के हैं पालन हारे ।

बिन पतवार ..........(2)

सद् गुरु वाणी जो समझता रहेगा
गुरु पद–चिन्हों पर जो चलता रहेगा
वो तो सच्चा गुरु मुख है प्यारे ।

बिन पतवार ..........(3)

अच्छा बुरा तो जिन्दगी में है आता
गुरु कृपा से सब पाप नशाता
वो चमकेगा ज्यों चन्दा सितारे ।

बिन पतवार ..........(4)

तेरे चरणों में है इबादत मेरी
शुभ कर्म लगाना है आदत तेरी
ऐ " अधम " गुरु गुण गारे ।

बिन पतवार ..........(5)

# साधना-पथ-पाथेय

– डा. विजय सिंह, गोरखपुर

भवाटवी से कैसे पार पाया जाय, इस हेतु योग–साधना की अपरिहार्यता सभी सिद्ध एवं संतों ने एक मात्र उपाय बताया है। सद्गुरु से शक्तिपात प्राप्त जीव कैसे अपने परमस्वतंत्र परमेश्वर स्वरूप को प्राप्त होगा? साधना में मंत्र का क्या योगदान है ? अन्तर्जगत बोध होने पर चिदाकाश में घटित होने वाली मनोमय, विज्ञानमय लोकों के बोध का रहस्य क्या है ? आदि–आदि प्रश्न साधक को जानने की इच्छा होती है। एक लोकोक्ति है– " **देवे परिचयो नास्ति देव पूजा कथं भवेत्** " ? साधक समुदाय में बाहुल्यता से यह समस्या रहती है कि जब तक इष्ट देवता का दर्शन न हो तब तक ठीक–ठीक ध्यान कैसे हो सकता है। इसका समाधान है– गुरुप्रदत्त वीर्य सम्पन्न मंत्र का यथाविधि श्वास–प्रश्वास जाप। जैसे काठ में निहित अग्नि को यथाविधि अभिव्यक्त करने के लिये कौशल पूर्वक घर्षण की जरूरत होती है। उसी प्रकार मंत्र में निहित ईष्टत्व, सद्गुरु तत्व एवं उस मंत्र के समस्त ऋषियों का दर्शन जप की निरन्तरता अगाधता से ही प्राप्त होता है। अतः हम सभी को सद्गुरु प्रदत्त मंत्र का अनुष्ठानिक जाप करने से ही यथार्थ ध्यान संभव है। अन्यथा मंत्र के पूर्ण प्रज्वलन के बिना ध्यान कल्पित होगा। यह भी कम नहीं है परन्तु यथार्थता की ओर बढ़ने के लिये ध्यानी को परिपुष्ट मात्रा में मंत्र जप करते रहना चाहिये। ध्यान लगने पर जब आनन्द, उत्सुकता, क्रिया आदि होने लगता है उस समय जो साधक मंत्र जाप छोड़ देते हैं वे आगे चलकर अन्तराय से घिर उठते हैं। क्योंकि सिद्ध सद्गुरु मंत्र में इष्टदेवरूपा शक्ति अव्यक्त रूप में विद्यमान है। उसे प्रत्यक्ष करने के लिये मंत्र के साथ चित्त का संघर्षमय संयोजन होना अति आवश्यक है। जिसके परिणामतः इष्ट भावना करने से देवता का रूप घटाकाश के मूलाधार में पहले अस्थाई रूप में अभिव्यक्त होने लगता है उसके बाद क्रिया के प्रभाव में शनैः शनैः स्थायित्व प्राप्त होता है। इसे ही यथार्थ ध्यान कहते हैं। धारणा रूप में शास्त्र कल्पित रूप का तब तक ध्यान करते रहना है जब तक मंत्र के तेज में ईष्ट अपने को प्रकट न कर दे।

एक अनुभवी संत की कुछ बातें यहाँ विचारणीय हैं –

मनुष्य की स्वाभाविक श्वास की संख्या 21600 मानी जाती है। प्रतिश्वास–प्रश्वास का मंत्र सम्बन्ध ही अजपा का गूढ़ार्थ है। एक साथ इतना जाप न कर सकने पर भिन्न–भिन्न खंडशः जप 21600 होनी चाहिये। प्रतिदिन। मनुष्य को अपने सामर्थ्य के अनुसार अपने आय का कुछ अंश निष्काम भाव से दान के लिये निकालना चाहिए। इससे अपरिग्रह भाव दृढ़ होता है। गाढ़े ध्यानी को भी इसका अभ्यास करना चाहिये। अन्यथा लौकिक धनैषणा पुनः पशुत्व की

और ढकेल देता है।

ईष्ट मूर्ति–दर्शन, सद्गुरु स्वरूप दर्शन ज्योतिर्मय होने पर साधक का आत्मसमर्पण स्वयं हो जाता है। " मैं प्रभु के ऊपर निर्भर हूँ " इस भाव का उदय और आगे प्रगाढ़ ध्यान के कारण " प्रभु ने मुझको ग्रहण कर लिया है " यह भाव बना रहता है। जो कुछ शरीर कर रहा है सब कर्म उन्हीं का है। ऐसा ध्यानी को भाव होता है। जो मात्र बातों के बरात लगाने वाले हैं वे इन भावों के अल्पांश को भी अन्दर से अनुभव नहीं करते हैं। क्योंकि साधक को सर्वप्रथम श्री गुरु प्रीति या उनकी प्रसन्नता–लाभ करना ही उद्देश्य होना चाहिए। जीव का प्रभु विस्मरण ही प्रधान रोग है। जिसके चलते जगत में संस्कारजनित कष्ट और दुर्दशा सहना पड़ता है। अतः जप, ध्यान, अनुष्ठान आदि के द्वारा आनन्दानुभव प्राप्त होने पर तथा अनन्य भाव से उन आनन्दकन्द परमशिव, परमनारायण श्री प्रभु के चरणारविन्दों का चिन्तन करने से वो कृपाधन संस्कार जनित महाकष्टों से छुटकारा अवश्य–अवश्य ही देते हैं। एक बात हमें हर मनः स्थिति में अभ्यासपूर्वक याद रखना चाहिए कि हमारा अनुभूति लाभ करना मात्र लक्ष्य नहीं है, अपितु श्री गुरुचरणों में आत्मनिवेदन। अतः हमें साधना तब तक निरन्तर करते रहना चाहिए जब तक हम गुरु–अनुगत न हो जायें। इसके होने पर सद्गुरु ही सब कुछ कर देते हैं।

साधक गुरु कृपा से ही पूर्ण साक्षात्कार का अधिकारी बनता है। तब उसका लक्ष्य गुरु की आज्ञा का पालन करना ही रहता है। " **आज्ञा गुरुणाम् विचारणीया** " जीवन का मूल मंत्र होता है। अपने परम सद्गुरु भगवान का दिव्य–जीवन–चरित्र इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

सद्गुरु के बताये साधना विधि को हमें निष्ठापूर्वक जीवन पर्यन्त करते रहना चाहिए। अनुभूतियाँ होती हैं या नहीं। ध्यान लगता हो अथवा नहीं। परन्तु नियमानुवर्तिता से मंत्र का जप आगे सब रहस्य अकस्मात उजागर कर देगा।

यहाँ एक वृतान्त का अवलोकन करें। श्री योगीराज श्यामाचरण लाहड़ी महाशय के एक शिष्य पालधी महाशय हो चुके हैं। एक दिन इनके पास इनका एक शिष्य आया। उसने निवेदन किया–महाराज, साधन में कोई उन्नति नहीं हो रही है। कुछ अनुभव भी नहीं होता है। अब तो निराशा ने यहाँ तक घेर लिया है कि मन साधन को भी छोड़ देना चाहता है। पालधी महाशय ने उससे क्या कहा वह अत्यन्त विचारणीय है। उन्होंने उस शिष्य से कहा–बेटा ! घबड़ाओ नहीं। निष्ठा से गुरु–आज्ञा पालन करते रहो। फल अवश्य मिलेगा। ( श्री गुरुदेव भगवान का भी कथन है– " मनुष्य चाकरी देत है क्यों राखें भगवान " ) देखो ! मैं श्री गुरु से साधन लेकर ग्यारह वर्ष तक उनके ( श्री लाहड़ी महाशय ) के सानिध्य में साधन करता रहा। साधन–लब्ध अनुभूति कुछ भी नहीं थी। कुछ दिनों बाद गुरुदेव का तिरोधान हुआ। मैं अत्यन्त घबड़ाया सोचने लगा अब मेरा आध्यात्मिक उत्थान असंभव है। जब उन समर्थ गुरु के रहते कुछ नहीं हुआ तो अब क्या होगा ? कभी–कभी मन में विषाद्–अवसाद घिर आता। परन्तु अन्दर से विवेक कहता, साधन मत छोड़ो। मैं पूर्ववत् साधन करता रहा। इस प्रकार श्री गुरु के तिरोधान के तेरह वर्ष बाद

तक मैं नियमित रूप से साधन करता रहा। एक दिन उन कृपाधन की दृष्टि पड़ी और मैं निहाल हो गया। एक दिन प्रातः काल नित्यक्रिया के लिए बाथरूम में गया। अकस्मात एक तीव्र अनुभूति यहीं जाग्रत हुई और स्नानागार में ही मैं समाधिस्थ हो गया। एक विराट अखण्ड तेजोमय प्रकाश का अनुभव होने लगा मेरा देहात्मबोध, वाह्य जागतिक ज्ञान लोप हो गया। उस तेज में सद्गुरु की चिन्मय मूर्ति का दर्शन हुआ। आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उस समय जो प्रकाश हुआ उस पर आजतक किसी मनोदशा में आवरण नहीं पड़ा। उस दिन घण्टों उसी समाधि में स्नानागार में पड़ा रहा। समाधि से जाग्रत होने के बाद से शोक दुखादि हमेशा के लिए गायब हो गये। अत: वह परम गुरु सदैव जानते हैं। साधक को किसी भी स्थिति में निराश होकर साधना नहीं छोड़नी चाहिए।

**पालधी महाशय के उपदेश का सारांश इस प्रकार है –**

चित्तरूपी ब्रह्म आभास चैतन्य है। चित्त के माया (त्रिगुण) सानिध्य से ही विपरीत ज्ञान होता है। उसे ही जीव अवस्था कहते हैं। जीव जब गर्भ में आता है उस समय से ही उसके सुषुम्ना में **सोऽहं** भाव विलोम से चन्द्र मण्डल से मणि पूरक (सूर्य मण्डल) तक प्राण द्वारा गतिशील रहता है। जीव भी उसी के साथ पिण्डाकाश में विचरण करता है। परन्तु प्रसवावस्था में जीव का विषयों के साथ संलग्नता प्राप्त हो जाता है। सुषुम्नाशक्ति बन्द हो जाती है। इड़ा–पिंगला–मार्ग से प्राण गति संचारित होने लगता है। इसका स्वरूप है रज और तम रूपी आवरण शक्ति। हंस और सोऽहं शब्द के साथ मूलाधार से आज्ञा चक्र के निम्न तल तक का नाम है संचार। शून्य से बना हंस नादात्मक सर्पाकार कुण्डलिनी शक्ति है। यही प्राण शक्ति है। सामान्य जीव में स्थूल स्पन्दन इसका आज्ञाचक्र से मणिपुर तक बना रहता है। अपान वायु रूप सोऽहं मूलाधार से मणिपुर तक स्पन्दित रहता है। इड़ा–पिंगला की गति एवं सुषुम्ना की निष्क्रियता ही घोर संसारी दशा है, जीव का। जब सद्गुरु कृपा से जाग्रत कुण्डलिनी सुषुम्ना द्वार खोलकर अग्रसरित होने लगती है तब मूलाधार से आज्ञा चक्रतक विद्या रूपी माया का विकास होता है। तब अपान रूप सोऽहं द्वारा आकृष्ट होकर हंसः की ऊर्ध्व गति होती है। अब इस अवस्था में जीव में जीव को अपने स्वातन्त्र का आभास होने लगता है। अत: निष्ठापूर्वक मंत्रानुसंधान करते रहने पर आज्ञा चक्र भेदकर कुण्डलिनी संहस्रार की ओर गति पाकर जीव को ब्रह्म की अभेदावस्था का बोध कराती है। यह रहस्य साधना व्यापार द्वारा ही उद्घाटित है अथवा परम सद्गुरु की अहैतुक कृपा से सुलभ प्राप्त हो जाता है।

# याद रखो

यहाँ के धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार, यश-कीर्ति आदि का कोई महत्व नहीं है। ये तो प्रारब्धवश राक्षसों तथा चोर-डाकुओं के पास भी हो सकते हैं। महत्व तो है दैवी सम्पदा के गुणों का। जीवन में उन्हीं का उपार्जन, सेवन तथा संवर्धन करते रहना चाहिए। धन-दौलत, मान-सम्मान, पद-अधिकार और यश-कीर्ति प्रचुर मात्रा में प्राप्त भी हो गये और जीवन आसुरी सम्पदा से भरा रहा। पापकर्म होते रहे तो इन सब पदार्थों के होने पर भी न यहाँ शान्ति-सुख मिलेगा और न परलोक में ही। वरं जिन आसुरी स्वभाव वाले मानवों को ये सब प्राप्त हैं, वे जिस घोर अशान्ति, दिन-रात के अन्तर्दाह, अत्यन्त चिन्ता का भोग करते हैं और आठों पहर काम, क्रोध, लोभ, अभिमान के वश होकर द्रोह, दम्भ, द्वेष, चोरी, ठगी, छिपी या खुली डकैती, पर-निन्दा, पर-अनिष्टसाधन, वैर, हिंसा, ध्वंस आदि मानस तथा शारीरिक पापों में लगे रहते हैं, उस पर विचार करने पर तो इस स्थिति से बुद्धिमान् पुरुष को बड़ा भय लगता है। पर नरक के कीट की भाँति दिन-रात ऐसे ही पतित जीवन के प्रवाह में पड़े हुए वे लोग इस पाप-जीवन में गौरव का अनुभव करने लगते हैं और इसको कर्तव्य मान लेते हैं। यह भविष्य को, सर्वथा दुःख संतापमय बनाने वाली बड़ी बुरी स्थिति है। आसुरी भोग-जगत् में प्रायः यही स्थिति है।

SIDDHYOG Postal Regd. No. : Ag. 19/2012-14 1. 09. 2014

प्रेषण कार्यालय :

# सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

**श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र**
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

______________________

______________________

सभी प्राणियों के अन्दर भगवान् श्रीहरि आत्मरूप से विराजमान हैं, अतः सब प्राणियों को भगवान् का निवास–स्थान समझकर किसी से भी द्रोह नहीं करना चाहिए, ऐसा करने से ही भगवान् प्रसन्न होते हैं।

– श्रीमद्भगवतगीता

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. बाबूलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566 सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) बाबूलाल शर्मा